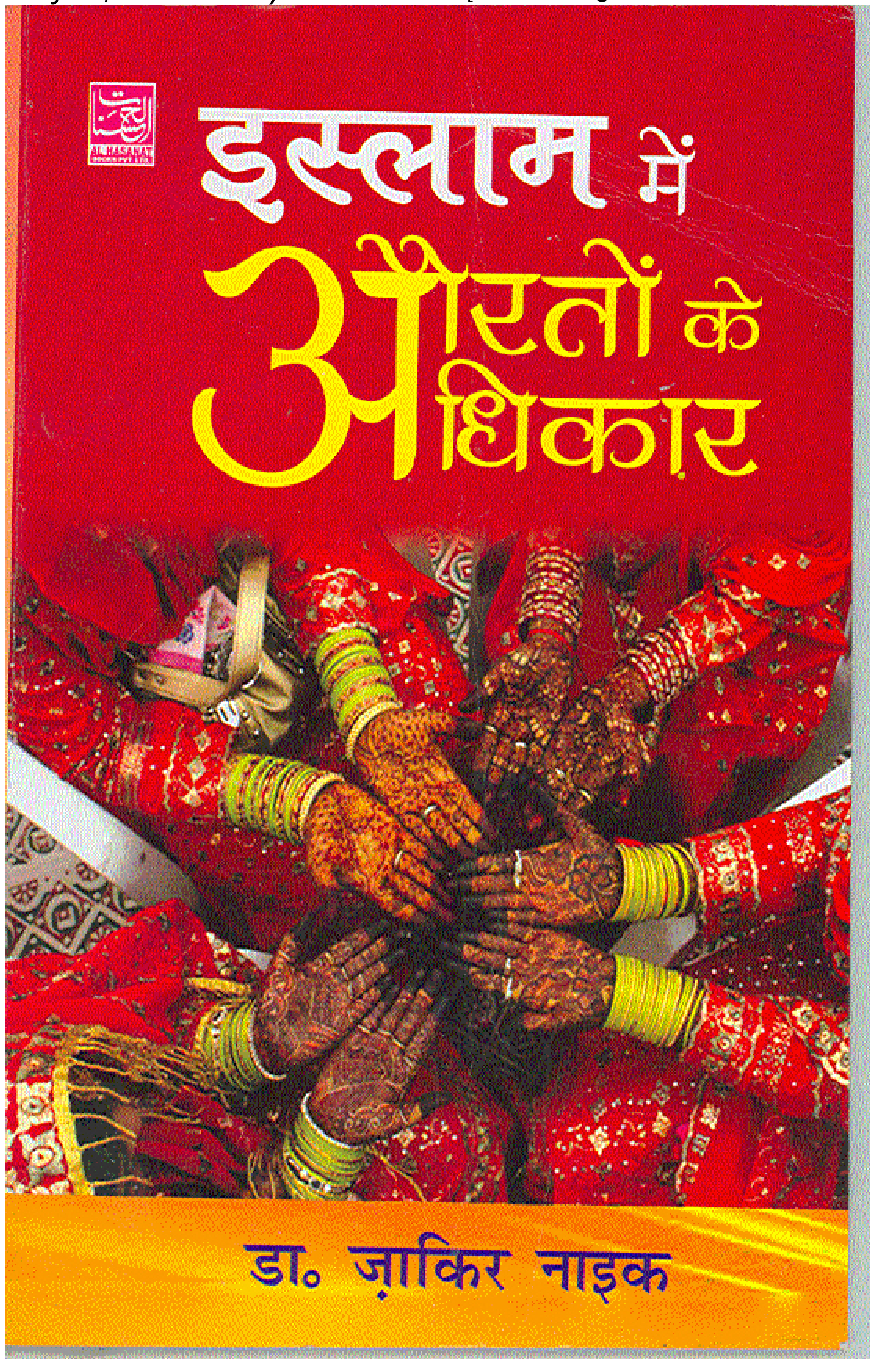
Hindi book “islam mein auraton (nariyon,maheelaon) ke adhikaar” [**Women Rights in Islam Modernizing or Outdated?]** by: Dr. Zakir Naik



e-book by : umarkairanvi@gmail.com **antimawtar.blogspot.com** - islaminhindi.blogspot.com

Women Rights in Islam.
Women Rights in Islam Modernizing or Outdated?

Read Full Book

Available: **http://www.ilovezakirnaik.com/**

ISLAM MEIN AURTON
KE ADHIKAAR
(Dr. ZAKIR NAIK)

संस्करण 2010

प्रकाशकः
ए०एम०फ़हीम
अल हसनात बुक्स प्रा० लि०
3004/2, सर सय्यद अहमद रोड
दरिया गंज,नई दिल्ली-110002
TeL: 011-23271845,011-41563256
E-mail:alhasanatbooks@rediffmail.com
faisalfaheem@rediffmail.com

मुद्रक
एच० एस० ऑफसेट प्रेस
दरिया गंज नई दिल्ली-2

मूल्यः
50/-

विषय सूची

परिचय

जनाब डॉ० ज़ाकिर नाइक साहब, डा० मुहम्मद नाइक साहब भूतपूर्व गर्वनर और सफ़ीर तलयार ख़ान साहब, ग़ैर-मुल्कि अतिथि और मान्य महिलाएं व पुरूष

अस्सलामु अलैकुम!

सब से पहले तो मैं इस्लामिक रिसर्च फ़ाउंडेशन के ज़िम्मेदार हज़रात का शुक्रिया अदा करना चाहूंगा कि उन्होंने मुझे इस तक़रीब (अधिवेशन) की सदारत करने की दावत दी जैसा कि आप लोगों को मालूम है आज हमारा विषय है:

"इस्लाम में औरतों के अधिकार"............नए या पुराने?

वैसे तो जदीद (नए) से मुराद हर वह चीज़ ली जाती है जो क़दीम (पुरानी) न हो। लेकिन आज की तक़रीब (अधिवेशन) में देखा जाए तो सवाल यह बनता है कि इस्लाम ने औरत को आज से 1400 साल पहले जो अधिकार दिये थे क्या वह आज भी काफ़ी हैं या नहीं।

वैसे तो समाज में औरत का मुक़ाम (स्थान) का विषय सदियों से बहस का विषय रहा है लेकिन इस ज़माने में इन चर्चाओं ने काफ़ी गम्भीर रूप धारण कर लिया है। कई समस्याओं के हवाले से सूरते हाल बहुत उलझन की हो चुकी है।

तलाक़, ज़्यादा पत्नियां और ख़्वातीन की सियासी और समाजी सरगरमियों (गतिविधियों) में शिर्कत ऐसे विषय हैं जिन पर मीडिया में चर्चा जारी रहती है। अगरचे किसी हद तक हक़ीक़ी मसाइल भी हैं लेकिन बहुत से मुआमलात ऐसे है जिन्हें मीडिया ज़रूरत से ज़्यादा

उछाल रहा है।

यह बात बिल्कुल सही है मग़रिबी (पश्चिमी) औरत समाजी, क़ानूनी, आर्थिक और सियासी हुक़ूक़ को हासिल करने में सफ़ल हो चुकी है। अगरचे इस के लिए लम्बे समय तक लगातार कोशिशें करना पड़ीं जिस के नतीजे में इसे ऊपर बताए गए अधिकार तो हासिल हो गए हैं लेकिन मैं कहना चाहूंगा कि इस दौरान वह बहुत कुछ गंवा बैठी है।

मेरे दोस्तों! अगर आप मग़रिबी (पश्चिमी) समाज को ध्यान से देखेंगे तो आप मुझ से सहमति करेंगे कि मग़रिबी औरत बहुत कुछ खो चुकी है। वह खानदानी निज़ामे ज़िन्दगी से महरूम (वंचित) हुई, ज़हनी सुकून से महरूम हुई और यहां तक कि वह अपने औरत होने के वक़ार से भी महरूम हो गई।

दूसरी तरफ़ अगर आप इस्लाम का जायज़ा लें तो आप को मालूम होगा कि इस्लाम ने आज से 1400 साल पहले ही औरत को बेशुमार अधिकार दिये थे। यह वह वक़्त था जब दुनिया की दूसरी तहज़ीबें यह सोच रही थीं कि औरत को इंसान भी माना जा सकता है या नहीं।

लिहाज़ा हमें चाहिए कि इस समस्या का बिना पक्षपात और ग़ैर-जज़्बाती अंदाज़ में जायज़ा लेकर यह फ़ैसला करें कि इस्लाम ख़्वातीन (औरत) को जो हुक़ूक़ देता है वह काफ़ी हैं या ना काफ़ी और यह कि वह हुक़ूक़ नए दौर के तक़ाज़ों के समान हैं या नहीं।

आप लोगों की खुशनसीबी है कि नामवर दानिशवर डॉ० ज़ाकिर नाइक आज इस विषय पर बातचीत करेंगे। चूंकि वह समस्या के तमाम पहलुओं का जायज़ा लेंगे लिहाज़ा मेरे लिए ज़रूरी नहीं कि मैं इस हवाले से तमाम क़ुरआनी आयात आप के सामने पेश करूं या उन तमाम हदीसे नब्विया (स.अ.व.) का हवाला दूं जो औरतों के हुक़ूक़ के विषय से संबंधित हैं और पैग़म्बरे इस्लाम (स.अ.व.) से रिवायत की गई हैं।

लेकिन दो आयात का क़ुरआनी हवाला ज़रूर देना चाहूंगा ताकि यह बात सामने आ सके कि इस्लाम ने औरत को कितना इज़्ज़त वाला मुक़ाम (स्थान) अता किया है। क़ुरआन मजीद की सूरःबक़रह में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

وَلَهُنَّ مِثْلُ الَّذِى عَلَيْهِنَّ بِالْمَعْرُوْفِ وَلِلرِّجَالِ
عَلَيْهِنَّ دَرَجَةٌ وَاللّٰهُ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ. (٢٢٨:٢)

"औरतों के लिए भी मारूफ़ (जाना हुआ) तरीक़े पर वैसे ही हुक़ूक़ हैं जैसे मर्दों के हुक़ूक़ उन पर हैं। अलबत्ता मर्दों को उन पर एक दर्जा हासिल है। और सब पर अल्लाह ज़बरदस्त इख़्तियार रखने वाला और हकीम व दाना (अक़्ल वाला) मौजूद है।"

मैं चाहूंगा कि आप इस आयत का एक-एक शब्द ज़हन में रखें क्योंकि इस आयत में साफ़ तौर पर बताया जा रहा है कि मर्दों और औरतों के एक दूसरे पर बराबर हुक़ूक़ हैं। और इस बात को क़ुरआन में किसी दूसरी जगह पर मना नहीं किया गया। अलबत्ता इसी आयत में एक बात और कही गई है और वह यह कि मर्दों को औरतों पर एक तरह की फ़ज़ीलत हासिल है। क्योंकि यह बहुत महत्तवपूर्ण शब्द हैं। और इन शब्दों का मतलब मालूम करने में कई जगह ग़लती भी कही गई है।

सब से पहले तो यह बात ज़िक्र के क़ाबिल है कि इन शब्दों में दोनो के हुक़ूक़ का ज़िक्र नहीं किया जा रहा है। जैसे कि हम पहले भी देख चुके हैं, हुक़ूक़ के बारे में तो इस आयत के पहले हिस्से में ही स्पष्ट कर दिया गया है कि दोनों के एक दूसरे पर हुक़ूक़ हैं। जहां तक आयत के दूसरे हिस्से का संबंध है यानी "मर्दों को एक दर्जा हासिल होने" का, इस को समझने के लिए हमें एक और पवित्र आयत को भी ख़ास ध्यान में रखना चाहिए। सूरःनिसा में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

اَلرِّجَالُ قَوّٰمُوْنَ عَلَى النِّسَاءِ بِمَا فَضَّلَ اللّٰهُ بَعْضَهُمْ
عَلٰى بَعْضٍ وَّبِمَا اَنْفَقُوْا مِنْ اَمْوَالِهِمْ ط (٣٤:٤)

"मर्द औरतों पर क़वाम (मुहाफ़िज़) हैं, इस बिना पर कि अल्लाह ने इनमें से एक को दूसरे पर फ़ज़ीलत दी है। और इस बिना पर कि मर्द अपना माल ख़र्च करते हैं।"

इस आयत से भी यही पता चलता है कि चूंकि औरत कमज़ोर होती है इसी लिए अल्लाह तआला ने मर्द को इसका क़वाम (मुहाफ़िज़) बनाया है। यह हकीक़त है कि मर्द शारिरिक तौर पर औरत से अलग हुआ है। क्योंकि वह कम से कम जिसमानी लिहाज़ से ज़्यादा ताक़तवर हुआ है। इसी वजह से इसे ज़्यादा ज़िम्मेदारी दी गई है। जैसा कि मैंने पहले अर्ज़ किया मर्द को जो दर्जा दिया गया है इस का संबंध हुक़ूक़ से नहीं फ़राइज़ से है। लिहाज़ा मर्द को मिलने वाला यह दर्जा न औरत के हुक़ूक़ में कमी का सबब बनता है और न ही इस की एहमियत को घटाता है। लिहाज़ा मैं आप से गुज़ारिश करता हूं कि इस गम्भीर मस्ले पर ग़ौर व फ़िक्र के बाद ही कोई फ़ैसला अपनाएं।

मेरे ख़याल में औरत को सुरक्षा देना ही मर्द की सब से एहम और नाज़ुक ज़िम्मेदारी है। और इस ज़िम्मेदारी का पूरा एहसास होना बहुत ज़रूरी है लेकिन ऐसा नहीं हो रहा। इस ज़िम्मेदारी की हुदूद बहुत बड़ी हैं। अगर आप ग़ौर करें तो आप को एहसास होगा कि मर्द अपनी यह ज़िम्मेदारी पूरी नहीं कर रहे और अपना बुनियादी फ़र्ज़, यानी औरत की सुरक्षा नहीं कर पा रहे हैं।

मैं यहां इस हवाले से कोई बहस नहीं छेड़ना चाहता कि इस सूरते हाल का ज़िम्मेदार कौन है? क्योंकि मेरे पास वक़्त की कमी है। किसी हद तक इस की ज़िम्मेदारी औरतों पर भी हो सकती है लेकिन बात वहीं रहती है कि इस सूरतेहाल के नतीजे में औरतों के

हवाले से जुर्म और ग़लत इस्तेमाल के मामले सामने आ रहे हैं। हमें हिन्दुस्तान की समाजी और अख़लाक़ी नज़र से औरत को इज़्ज़त देना है जिसकी वह हक़दार है। क्योंकि इस पसमंजर में कोई औरत आज़ादी के बदले में इज़्ज़त, और पाकीज़गी को ख़त्म नहीं करना चाहेगी और इसी तरह कोई मर्द भी अपनी ज़िम्मेदारियों से जान छुड़ाना नहीं चाहेगा।

मर्द और औरत के संबंधों के इस नाज़ुक पहलू की तफ़सील महान विचारक और शायर अल्लामा इक़बाल ने अपनी एक नज़्म में कुछ यूं की है:

एक ज़िन्दा हक़ीक़त मेरे सीने में है मस्तूर
किया जानेगा वह जिस की रगों में है लहू सर्द
ने परदा न तालीम, नई हो कि पुरानी
निसवानियत ज़न का निगहबान है फ़क़त मर्द
जिस क़ौम ने इस ज़िन्दा हक़ीक़त को न पाया
इस क़ौम का ख़ुर्शीद बहुत जल्द हुआ ज़र्द

जैसा के मैं ने पहले कहा कि मेरे पास वक़्त बहुत महदूद (सीमित) है और डॉ० ज़ाकिर नाइक यहां मौजूद हैं जो इस विषय पर पूरी तफ़सील और वज़ाहत के साथ बातचीत करेंगे। अलबत्ता मैं इतना ज़रूर कहूंगा कि क़ुरआन ने औरत को बहुत इज़्ज़त वाला मक़ाम अता किया है। असल कारण हमारी जहालत और क़ुरआन से परिचित न होने का है और इस समस्या का हल तालीम और आगाही है। लोगों में इल्म और आगाही का फैलाना ही इस समस्या का हल है।

मुझे यहां थामस जैफ़रसन का एक क़ौल याद आ रहा है इसने कहा था:

"वह क़ौम जो जाहिल रह कर आज़ाद रहना चाहती है, वह एक ऐसी ख़्वाहिश कर रही है–जो न कभी पूरी हुई है और न कभी पूरी होगी।"

वो ज़माने में मुअज़्ज़िज़ थे मुसलमां हो कर
और तुम ख़्वार हुए तारिक कुरआं हो कर

अब मैं आप से डॉ० ज़ाकिर नाइक का परिचय करवाना चाहूंगा। डॉ० साहब बम्बई से हैं। पैशे के लिहाज़ से वह एक डॉ० हैं लेकिन उन्होंने अपनी ज़िन्दगी तबलीगे इस्लाम (इस्लाम का प्रचार) के लिए वक़्फ़ कर दी है। वह इस्लाम को इस के असल और सही तनाज़ुर में दुनिया के सामने पेश करना चाहते हैं।

वह अपनी तक़रीरों के सिलसिले में, मुल्क में और मुल्क से बाहर बहुत से सफ़र कर चुके हैं। नौजवानी ही में कुरआन के हवाले से बड़ी गहरी आगाही रखते हैं। मैं यहां उनके वालदेन (माता-पिता) को भी ख़िराजे तहसीन (श्रद्धानजलि) पेश करना चाहूंगा जिन की कोशिशों और दुआओं से डॉ० ज़ाकिर इस मुक़ाम तक पहुंचे।

डॉ० साहब 1991 ई० में क़ायम होने वाले इस्लामिक रिसर्च फ़ाउंडेशन के जनरल सैक्रेट्री हैं।

शुक्रिया

❖×☆×❖

भाग-1

इस्लाम में औरतों के हुकूक

डॉ० ज़ाकिर नाइक की बातचीत

इस्लाम में औरतों के अधिकार

إِنَّ الْمُسْلِمِينَ وَالْمُسْلِمٰتِ وَالْمُؤْمِنِينَ وَالْمُؤْمِنٰتِ وَالْقٰنِتِينَ
وَالْقٰنِتٰتِ وَالصّٰدِقِينَ وَالصّٰدِقٰتِ وَالصّٰبِرِينَ وَالصّٰبِرٰتِ
وَالْخٰشِعِينَ وَالْخٰشِعٰتِ وَالْمُتَصَدِّقِينَ وَالْمُتَصَدِّقٰتِ وَالصَّائِمِينَ
وَالصّٰئِمٰتِ وَالْحٰفِظِينَ فُرُوجَهُمْ وَالْحٰفِظٰتِ وَالذّٰكِرِينَ اللّٰهَ
كَثِيرًا وَالذّٰكِرٰتِ أَعَدَّ اللّٰهُ لَهُمْ مَغْفِرَةً وَأَجْرًا عَظِيمًا. (٣٥:٣٣)

"बिल यक़ीन जो मर्द और औरतें मुस्लिम हैं, मोमिन हैं, मुतीअ (......) फ़रमान हैं, सच्चे हैं, साबिर हैं, अल्लाह के आगे झुकने वाले हैं, सदक़ा देने वाले हैं, रोज़े रखने वाले हैं, अपनी शर्मगाहों की हिफ़ाज़त करने वाले हैं और अल्लाह को ज़्यादा याद करने वाले हैं। अल्लाह ने उन के लिए मग़फ़िरत और बड़ा अज्र (सवाब, पुण्य) तैयार कर रखा है।"

अस्सलामु अलैकुम वरहमतुल्लाह वबराकातुहु

मैं जनाब जस्टिस एम एम क़ाज़ी साहब, अपने बुज़ुर्गों और अज़ीज़ बहन भाईयों को खुशामदीद कहता हूं।

हमारी आज की बातचीत का विषय है;

"इस्लाम में औरतों के हुक़ूक़"......नए या पुराने?

सब से पहले तो हम इस विषय के बुनियादी शब्द का अर्थ देखते हैं। आक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी के अनुसार औरतों के अधिकार (Women's Rights) से मुराद वह हुक़ूक़ हैं "जो औरतों को वही क़ानूनी और समाजी मक़ाम दिलाएं जो मर्दों को हासिल हैं। Modernize का मतलब ऑक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी के अनुसार है नया बनाना, जदीद मज़ाक़ वग़ैरा के अनुसार ढालना, दौरे हाज़िर के तक़ाज़ों से मिलाना।"

औरोलपिस्ट डिक्शनरी के अनुसार "जदीद बनाना या एक नई शक्ल व सूरत देना, मिसाल के तौर पर नज़रियात को नई शक्ल देना।"

मुख़्तसर तौर पर हम कह सकते हैं कि जिद्दत (नयापन) एक ऐसा अमल है जिस में ताज़ा तरीन मालूमात की रौशनी में मौजूदा सूरतेहाल में बेहतरी लाने की कोशिश की जाएगी गोया मौजूदा सूरतेहाल खुद "जिद्दत" नहीं कहलाएगी।

सवाल यह पैदा होता है कि क्या हम अपने मसाइल के हल की ख़ातिर और पूरे आलमे इंसानियत को एक नया तर्ज़े ज़िन्दगी देने के लिए जदीदयत पसन्दी इख़्तियार कर सकते हैं?

मैं अपनी बातचीत के दौरान जदीद नज़रयात से ग़र्ज़ नहीं रखूंगा और न ही मेरी बातचीत माहीरीन और बड़े-बड़े विचारकों के बयानात पर निर्भर होगी जो कुर्सी पर बैठ कर ऐसे नज़रयात बनाते रहते हैं जिन का कोई फ़ायदा नहीं होता।

यह हज़रात ज़्यादातर आराम से कुर्सी पर बैठ कर, बग़ैर किसी तजरबे के नज़रयात मालूम करते हैं और उनकी रौशनी में फ़ैसला करते हैं कि औरतों को अपनी ज़िन्दगी किस तरह गुज़ारनी चाहिए।

मैं अपने बयानात और नतीजे ऐसी हक़ीक़तों से मालूम करना चाहूंगा जिन्हें तजरबे की रौशनी में साबित भी किया जा सके।

हमें अपने ख़यालात को हक़ीक़त की कसौटी पर परखते रहना चाहिए दूसरी सूरत में हमारे ख़यालात हमें आसानी से गुमराही की तरफ़ भी ले जा सकते हैं। आप जानते हैं कि किसी ज़माने में दुनिया के ज़हीन लोग भी यह समझते थे कि ज़मीन चपटी है।

जहां तक "इस्लाम में औरतों के हुक़ूक़" का संबंध है, अगर हम सूरतेहाल को इस तरह देखेंगे जिस तरह उसकी अक्कासी पश्चिमी साधनों की तरफ़ से की जा रही है तो यक़ीनन हमें भी इस बात से सहमत होना पड़ेगा कि इस्लाम ने जो हुक़ूक़ औरतों को दिये हैं वह

वाक़ई पुराने और नाकाफ़ी हैं।

लेकिन हक़ीक़त यह है मग़रिब में "औरतों की आज़ादी" के नाम पर जो कुछ हो रहा है वह हक़ीक़त में औरत की इज़्ज़त को नुक़सान और उसकी रूह और जिस्म का ग़लत इस्तेमाल है जिस पर आज़ादी का ख़ुशनुमा परदा डाल दिया जाता है।

पश्चिमी समाज मुसलमानों से मांग करता है कि औरतों को हुक़ूक़ दिये जाएं लेकिन ख़ुद इस समाज ने औरतों को क्या दिया है? यही कि अमली तौर पर इसे तवायफ़ की सतह पर ले आया है। इसे एक ऐसी चीज़ बना डाला है जिस से मर्द लुत्फ़ अंदोज़ होते हैं। आर्ट और कल्चर के ख़ूबसूरत परदों के पीछे उसका इतना ग़लत इस्तेमाल किया जाता है कि वह जिंस (दह) के पुजारियों और कारोबारियों के हाथों में खिलौना बन कर रह गई है जिसका इसे एहसास भी नहीं।

और इस्लाम ने क्या किया? आज से 1400 साल पहले जहालत के ज़माने में इस्लाम की इन्क़लाबी तालीमात ने औरत को इसके हक़ीक़ी हुक़ूक़ और मरतबा अता किया।

शुरू से लेकर आज तक इस्लाम का मक़सद हमेशा यह रहा है कि औरतों के हवाले से हमारी सोच, हमारे ख़यालात हमारे एहसासात और ज़िन्दगी गुज़ारने के तरीक़े में बेहतरी लाई जाए और समाज में औरतों का मुक़ाम ऊंचा किया जाए।

इस से पहले कि मैं अपने विषय के हवाले से बातचीत को आगे बढ़ाऊं चन्द बातों का साफ़ कर देना बेहतर मालूम होता है।

☆ इस वक़्त दुनिया की आबादी में मुसलमान लगभग पांचवां हिस्सा हैं।

☆ मुसलमानों की यह आबादी बहुत से समाजों में विभाजित है इन समाजों में ज़िन्दगी गुज़ारने का तरीक़ा बराबर नहीं है। कुछ समाजों में इस्लामी तालीमात पर अमल किया जाता है तो कुछ समाज इस्लामी तालीमात से दूर हैं।

☆ "इस्लाम में औरतों के हुक़ूक़" क्या हैं इस बात का फ़ैसला इन मुसलमान समाजों को देख कर नहीं किया जाएगा बल्कि शरीअते इस्लामी के हक़ीक़ी बुनियाद से रहनुमाई ली जाएगी।

☆ इस्लामी तालीमात की सच्ची और बुनियादी बातें क़ुरआन और सुन्नत हैं। क़ुरआन जो अल्लाह का कलाम है और सुन्नत जो नबी करीम (स.अ.व.) की हदीसों से मालूम की गई है।

☆ क़ुरआन में ग़लत बयानी मौजूद नहीं है और न ही सही हदीसों में ग़लत बयानी मुम्किन है। इसी तरह सही हदीस और क़ुरआन की आयात में ग़लत बयानी मौजूद नहीं है।

☆ कभी-कभी विद्धवानों के बीच किसी बात पर इख़्तिलाफ़ होता है। ऐसे इख़्तिलाफ़ आसानी से दूर किये जा सकते हैं अगर क़ुरआन व सुन्नत की तालीमात को पूरी तरह सामने रखा जाए।

☆ क़ुरआन का तरीक़ा यह है कि अगर एक जगह बात मुख़्तसर तरीक़े से बयान हुई है तो दूसरी जगह इस को साफ़ कर दिया गया है। किसी नुक्ते को समझने के लिए इन तमाम मुक़ामात को सामने रखना ज़रूरी है जहां इस नुक्ते का ज़िक्र मौजूद है। कुछ लोग क़ुरआनी तालीमात को देखने के बजाए किसी एक नुक्ते को सामने रखते हैं और ग़लतफ़हमी का शिकार हो जाते हैं।

☆ आख़री बात यह है कि हर मुसलमान मर्द व औरत का फ़र्ज़ है कि वह अल्लाह तआला की रज़ा हासिल करने की कोशिश करे और दुनिया में अपनी ज़िन्दगी अल्लाह तआला का फ़रमाबरदार बन्दा बन कर गुज़ारे और अपने नफ़्स को ख़ुशी पहुंचाने या सिर्फ़ शोहरत हासिल करने के लिए कोई अमल न करे यानी दिखावे से दूर रहे। अब हम अपने विषय की तरफ़ आते हैं।

इस्लाम मर्द और औरत को बराबर के हुक़ूक़ देता है लेकिन यह हुक़ूक़ बराबर हैं एक जैसे नहीं हैं। इस्लामी तालीमात की रौशनी में

देखा जाए तो मर्द और औरत एक दूसरे के लिए तकमील का ज़रिया हैं। उनके बीच मिलनसारी होनी चाहिए, अगर दोनों अपना किरदार इस्लामी एहकाम के अनुसार अदा करें तो न उन के बीच दुश्मनी होगी और न मुख़ालफ़त।

जहां तक इस्लाम में औरतों के हुकूक़ का संबंध है मैं उन हुकूक़ को 6 बुनियादी दर्जात में बांटता हूं। यह दर्जात या क़िस्में निम्नलिखित हैं:

- ☆ रूहानी हुकूक़
- ☆ आर्थिक हुकूक़
- ☆ तालीमी हुकूक़
- ☆ क़ानूनी हुकूक़
- ☆ सियासी हुकूक़

आगे इन तमाम हुकूक़ का मुख़्तसर जायज़ा पेश किया जाएगा।

◆×☆×◆

इस्लाम में औरत के धार्मिक और रूहानी अधिकार

इस्लाम ने औरत को बहुत हुकूक़ दिए हैं। सब से पहले हम औरत के रूहानी और मज़हबी हुकूक़ के हवाले से बातचीत करेंगे। हम यह देखेंगे कि दीनी हैसियत से इस्लाम औरत को क्या स्थान देता है।

पश्चिमी दुनिया में इस्लाम के हवाले से जो ग़लतफ़हमियां हैं उनमें से एक यह है कि इस्लाम में जन्नत का तसव्वुर सिर्फ़ मर्द के लिए है औरत के लिए नहीं। दूसरे शब्दों में वे लोग यह समझते हैं कि इस्लाम में जन्नत सिर्फ़ मर्दों के लिए मख़्सूस है और औरत जन्नत में न जा सकेगी यह एक बड़ी ग़लतफ़हमी है जिसका जवाब क़ुरआन मजीद की इन आयातों में मौजूद है।

وَمَنْ يَّعْمَلْ مِنَ الصّٰلِحٰتِ مِنْ ذَكَرٍ اَوْ اُنْثٰى وَهُوَ مُؤْمِنٌ
فَاُولٰٓئِكَ يَدْخُلُوْنَ الْجَنَّةَ وَلَا يُظْلَمُوْنَ نَقِيْرًا. (۴:۱۲۴)

"और जो नेक अमल करेगा, चाहे वह औरत हो या मर्द, शर्त यह है कि हो वह मौमिन तो ऐसे ही लोग जन्नत में दाख़िल होंगे और उनकी ज़र्रा बराबर हक़तलफ़ी न की जाएगी।"

इसी से मिलती जुलती बात क़ुरआन मजीद की सूर:नहल में भी की गई है। इस आयत में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

مَنْ عَمِلَ صَالِحًا مِّنْ ذَكَرٍ اَوْ اُنْثٰى وَهُوَ مُؤْمِنٌ فَلَنُحْيِيَنَّهٗ حَيٰوةً
طَيِّبَةً وَلَنَجْزِيَنَّهُمْ اَجْرَهُمْ بِاَحْسَنِ مَا كَانُوْا يَعْمَلُوْنَ. (۱۶:۹۷)

"जो शख़्स भी नेक अमल करेगा, चाहे वह मर्द हो या औरत, शर्त यह है कि हो वह मोमिन, इसे हम दुनिया में पाकीज़ा ज़िन्दगी बसर कराएगें और (आख़िरत में) ऐसे लोगों को उन के अज्र उनके बेहतरीन आमाल के मुताबिक़ बख़्शेंगें।"

ऊपर बताई गई आयात से बात साफ़ हो जाती है कि इस्लाम में जन्नत को हासिल करने के लिए जिंस (लिंग) की कोई शर्त मौजूद नहीं है। अब आप बताईए कि क्या इस नुक्ते के हवाले से इस्लामी तालीमात को पुरानी या नाइन्साफ़ी वाला क़रार दिया जा सकता है?

इसी तरह पश्चिमी साधन ज़्यादातर यह कहते हैं कि धर्म औरत में रूह का वुजूद ही नहीं मानता। वह यह बात सिर्फ़ धर्म के हवाले से यूं करते हैं कि उसका इस्तेमाल इस्लाम पर भी हो जाता है हालांकि हक़ीक़त यह है कि यह अक़ीदा मसीहीयों का है।

17वीं सदी में रोम में होने वाली कौंसिल के इजलास में ईसाई उलमा इस नतीजे पर पहुंचे थे कि औरत में रूह मौजूद नहीं होती।1

जहां तक इस्लामी तालीमात का संबंध है इस हवाले से इस्लाम औरत और मर्द में कोई फ़र्क़ नहीं करता। इस बात को साफ़ तौर पर क़ुरआन मजीद में सूर:निसा की पहली आयत में बयान किया गया है।

يَـٰٓأَيُّهَا النَّاسُ اتَّقُوا رَبَّكُمُ الَّذِى خَلَقَكُم مِّن نَّفْسٍ وَّاحِدَةٍ وَخَلَقَ مِنْهَا زَوْجَهَا وَبَثَّ مِنْهُمَا رِجَالًا كَثِيرًا وَّنِسَآءً وَاتَّقُوا اللَّهَ الَّذِى تَسَآءَلُونَ بِهِۦ وَالْأَرْحَامَ إِنَّ اللَّهَ كَانَ عَلَيْكُمْ رَقِيبًا. (١:٣)

"लोगो! अपने रब से डरो जिस ने तुम को एक जान से पैदा किया और उसी जान से उसका जोड़ा बनाया और इन दोनों से बहुत से मर्द व औरत दुनिया में फैला दिये। इस ख़ुदा से डरो जिस का वासता देकर तुम एक दूसरे से अपने हक़ मांगते हो। और रिश्तेदारो के संबंधों को बिगाड़ने से परहेज़ करो यक़ीन

1- अगरचे बहैसियत मुसलमान हमें यक़ीन है कि मसीही उलमा का यह अक़ीदा (विश्वास) हज़रत ईसा (अलै०) की हक़ीक़ी तालीमात के मुताबिक़ नहीं हो सकता। (अनुवादक)

जानो कि अल्लाह तुम पर निगरानी कर रहा है।" (١:٤)

अल्लाह तआला क़ुरआन मजीद की सूर:नहल में फ़रमाता है:

وَاللَّهُ جَعَلَ لَكُم مِّنْ أَنفُسِكُمْ أَزْوَاجًا وَّجَعَلَ لَكُم مِّنْ أَزْوَاجِكُم بَنِينَ وَحَفَدَةً وَّرَزَقَكُم مِّنَ الطَّيِّبَاتِ ط (٧٢:١٦)

"और वह अल्लाह ही है जिस ने तुम्हारे लिए तुम्हारी हम जिंस बीवियां बनाई और इसी ने उन बीवियों से तुम्हें बेटे और पोते अता किये और अच्छी-अच्छी चीज़े तुम्हें खाने को दीं।"

इसी तरह सूर:अलशोरा में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

فَاطِرُ السَّمٰوٰتِ وَالْأَرْضِ جَعَلَ لَكُم مِّنْ أَنفُسِكُمْ أَزْوَاجًا وَمِنَ الْأَنْعَامِ أَزْوَاجًا يَذْرَؤُكُمْ فِيهِ لَيْسَ كَمِثْلِهِ شَيْءٌ وَهُوَ السَّمِيعُ الْبَصِيرُ. (١١:٤٢)

"आसमानो और ज़मीन का बनाने वाला जिस ने तुम्हारी अपनी जिंस से तुम्हारे लिए जोड़े पैदा किये और इसी तरह जानवरो में भी जोड़े बनाए और इस तरीक़े से वह तुम्हारी नस्ले फैलाता है। कायनात की कोई चीज़ इस के जैसी नहीं वह सब कुछ सुनने और देखने वाला है।"

ऊपर बताई गई आयात से यह बात साफ़ तौर पर सामने आ जाती है कि रूहानी हवाले से इस्लाम मर्द और औरत की फ़ितरत में कोई फ़र्क़ नहीं करता। आप किया समझते हैं, इस्लाम की तालीमात में जिद्दत (नयापन) मौजूद है या यह पुराना हैं? आदम अलै० के जन्म के हवाले से अल्लाह तआला क़ुरआन मजीद में फ़रमाता है:

فَإِذَا سَوَّيْتُهُ وَنَفَخْتُ فِيهِ مِن رُّوحِى فَقَعُوا لَهُ سَاجِدِينَ. (٢٩:١٥)

"जब मैं इसे पूरा बना चुकूं और इस में अपनी रूह में से कुछ फूंक दूं तो तुम सब इस के आगे सिजदे में गिर जाना।"

इसी तरह की बात क़ुरआन मजीद की सूर:सिजदा में भी की गई है। यहां अल्लाह तआला फ़रमाता है:

ثُمَّ سَوَّاهُ وَنَفَخَ فِيهِ مِن رُّوحِهِ وَجَعَلَ لَكُمُ السَّمْعَ

وَالْاَبْصَارَ وَالْاَفْـئِدَةَ قَلِيْلًا مَّا تَشْكُرُوْنَ. (٩:٣٢)

"फिर इस को नक सक से ठीक किया और इस के अन्दर अपनी रूह फूंक दी और तुम को कान दिए और आंखें दीं और दिल दिये। तुम लोग कम ही शुक्रगुज़ार होते हो।"

इन आयात में "रूह फूकने" के शब्दों से यह ग़लतफ़हमी नहीं होनी चाहिए कि इस्लाम "हुलूल" (बे तरतीब) वगै़रा जैसे अकीदों (मत्) की तालीम देता है। यहां बात सिर्फ़ अल्लाह तआला की कुदरत और इस संबंध की हो रही है जो बन्दे को अपने पैदा करने वाले के क़रीब कर देता है।

इस हवाले से मर्द और औरत में कोई फ़र्क़ नहीं किया गया। यह बात आदम और हव्वा अलै० दोनों के हवाले से की जा रही है। दोनों इस लिहाज़ से हर तरह बराबर हैं।

इसी तरह कुरआन मजीद में अल्लाह तआला यह फ़रमाता है कि ज़मीन पर अल्लाह तआला ने इंसान को ख़िलाफ़त (प्रतिनिधित्व) अता की है। ख़िलाफ़त का यह एज़ाज़ (इज़्ज़त) इंसान को बिना किसी जिंस (लिंग) के फ़र्क़ के दिया गया है। अल्लाह तआला फ़रमाता है।

وَلَقَدْ كَرَّمْنَا بَنِىْٓ اٰدَمَ وَحَمَلْنٰهُمْ فِى الْبَرِّ وَالْبَحْرِ وَرَزَقْنٰهُمْ مِّنَ
الطَّيِّبٰتِ وَفَضَّلْنٰهُمْ عَلٰى كَثِيْرٍ مِّمَّنْ خَلَقْنَا تَفْضِيْلًا. (٧٠:١٧)

"यह तो हमारी इनायत (कृपा) है कि हम ने बनी आदम को बुज़ुर्गी दी और उन्हें ख़ुश्की व तरी में सवारियां दीं और उनको पाकीज़ा चीज़ों से रिज़्क़ (रोज़ी-रोटी) दिया और अपनी बहुत सी मख़लूक़ात (प्राणियों) पर ख़ास फ़ौक़ियत (उत्तमता) बख़्शी।"

आप देख रहे हैं कि इस पवित्र आयत में ज़िक्र आदम अलै० की तमाम औलाद का हो रहा है। वह मर्द हो या औरत।

जिस विषय पर बात की जा रही है उसका एक और पहलू से

भी जायज़ा लिया जा सकता है। कुछ धार्मिक सहाइफ़ (ग्रंथ) में ज़वाले आदम या (जन्नत से आदम अलै० के ज़मीन पर आने का कारण औरत को क़रार दिया गया है)। मिसाल के तौर पर पवित्र इंजील में आदम अलै० को जन्नत के बाग़ से निकाले जाने की वजह औरत को क़रार दिया गया है। लेकिन इस्लाम का नज़रिया इस से बिल्कुल अलग है।

अगर आप कुरआन का मुताला (अध्ययन) करें तो एक दर्जन स्थानों पर आपको इस क़िस्से का ज़िक्र मिलेगा मिसाल के तौर पर सूर:एराफ़ की 19वीं आयत इन तमाम जगहों पर आदम व हव्वा अलै० का तरीका बराबर ही बताया गया है। दोनों से ग़लती हुई, दोनों को अपनी ग़लती पर शर्मिन्दगी हुई। दोनों माफ़ी के तलबगार (इच्छुक) हुए और अल्लाह तआला ने दोनों की तौबा कुबूल की।

इस के मुक़ाबले में अगर आप बाइबल का नज़रिया जानना चाहें तो किताब पैदाइश के तीसरे अध्याय का मुताला (अध्ययन) करें। आप देखेंगे कि इस क़िस्से की पूरी ज़िम्मेदारी हव्वा अलै० के ज़िम्में कर दी गई हैं। यही नहीं हव्वा अलै० की इस ग़लती को गुनाह हक़ीक़ी क़रार दे दिया गया और यह अक़ीदा (विश्वास) बना लिया गया है कि हर इंसान ही गुनाहगार पैदा होता है।

किताब पैदाइश की निम्नलिखित आयत में इस हवाले से बाइबल का नज़रिया निम्नलिखित बयान में साफ़ तोर पर देखा जा सकता है।

"फिर उस ने औरत से कहा कि मैं तेरे दर्द हमल (गर्भ) को बढ़ा दूंगा, तू दर्द के साथ बच्चे जनेगी और तेरी रग़बत (ख़्वाहिश) अपने शोहर की तरफ़ होगी और वह तुझ पर हुकूमत करेगा।"

(पैदाइश, अध्याय-3, आयत:16)

न सिर्फ़ यह कि आदम अलै० के जन्नत से निकलने का कारण

औरत को बताया जा रहा है बल्कि हमल (गर्भ) और औलाद की पैदाइश की तकलीफ़ को औरत की सज़ा बताया जा रहा है। ज़ाहिर है कि इन बयानात से औरत के वक़ार और मरतबे (पद) में बढ़ोतरी तो होती नहीं। दूसरी तरफ़ अगर इस हवाले से क़ुरआन का मुताला (अध्ययन) किया जाए तो पता चलता है कि इस्लाम इन तकलीफ़ों को औरत की अज़मत और वक़ार में बढ़ोतरी की वजह बताता है। मिसाल के तौर पर इन पवित्र आयात का अध्ययन कीजिए।

सूर:निसा में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

"लोगो! अपने रब से डरो जिस ने तुम को एक जान से पैदा किया और इसी जान से उसका जोड़ा बनाया और इन दोनों से बहुत से मर्द व औरत दुनिया में फैला दिये। इस ख़ुदा से डरो जिसका वासता दे कर तुम एक दूसरे से अपने हक़ मांगते हो। और रिश्तेदारों से संबंध बिगाड़ने से परहेज़ करो। यक़ीन जानो कि अल्लाह तुम पर निगरानी कर रहा है।" (1:4)

इसी तरह सूर:लुक़मान में आता है:

"और यह हक़ीक़त है कि हम ने इंसान को अपने वालदेन (माता-पिता) का हक़ पहचानने की ख़ुद ताकीद (चेतावनी) की है। इस की मां ने तकलीफ़ पर तकलीफ़ उठा कर इसे अपने पेट में रखा और दो साल इस का दूध छूटने में लगे (इसी लिए हम ने इस को नसीहत की कि) मेरा शुक्र करो और अपने वालदेन का शुक्र बजा ला, मेरी ही तरफ़ तुझे पलटना है।" (14:31)

सूर:एहक़ाफ़ में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

وَوَصَّيْنَا الْإِنْسَانَ بِوَالِدَيْهِ إِحْسٰنًا حَمَلَتْهُ أُمُّهُ كُرْهًا
كُرْهًا وَحَمْلُهُ وَفِصٰلُهُ ثَلٰثُوْنَ شَهْرًا ط (١٥:٣٦)

"और हम ने इंसान को आदेश दिया कि अपने वालदेन (माता-पिता) के साथ नेक बरताव करे। उसकी मां ने तकलीफ़े

उठा कर उसको अपने पेट में रखा और परेशानियां उठा कर ही उसको जना और उस के हमल (गर्भ) और दूध छुड़ाने में तीस महीने लग गए।

जैसा कि ऊपर दी गई क़ुरआनी आयात से साफ़ मालूम होता है, इस्लाम मां बनने के अमल की अज़मत और एहमियत को मानते हुए औरत को इस हवाले से बहुत ऊंचा स्थान देता है। इन पवित्र आयतों को पढ़ने के बाद आप की राय किया बनती है? इस्लाम औरतों को जो हुक़ूक़ देता है क्या वह वाक़ई फ़रसूदा (पुराने) हैं? अल्लाह तआला की बारगाह में बरतरी का मैयार सिर्फ़ और सिर्फ़ तक़्वा है। तक़्वा, परहेज़गारी और नेकी ही की बुनियाद पर अल्लाह तआला के यहां स्थान का फ़ैसला होता है।

सूर:हुजरात में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

"लोगो! हम ने तुम को एक मर्द और एक औरत से पैदा किया और फिर तुम्हारी क़ौमें और बिरादरियां बना दीं ताकि तुम एक दूसरे को पहचानो। वास्तव में अल्लाह के नज़दीक तुम में सब से ज़्यादा इज़्ज़त वाला वह है जो तुम्हारे अंदर सब से ज़्यादा परहेज़गार है। यक़ीनन अल्लाह सब से ज़्यादा जानने वाला और बाख़बर है।" (13:49)

जिंस (लिंग), रंग, नस्ल और माल व दौलत इस्लाम में इज़्ज़त का मैयार नहीं है। अल्लाह तआला के यहां मैयार एक ही है और वह है "तक़्वा" सिर्फ़ जिंस (लिंग) की बुनियाद पर अल्लाह के यहां न सज़ा मिलेगी और न जज़ा (अच्छा बदला)।

सूर:आल इमरान में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

فَاسْتَجَابَ لَهُمْ رَبُّهُمْ أَنِّي لَا أُضِيْعُ عَمَلَ عَامِلٍ مِّنْكُمْ مِّنْ ذَكَرٍ أَوْ أُنْثٰى
بَعْضُكُمْ مِّنْ بَعْضٍ فَالَّذِيْنَ هَاجَرُوْا وَأُخْرِجُوْا مِنْ دِيَارِهِمْ وَأُوْذُوْا فِيْ سَبِيْلِيْ
وَقٰتَلُوْا وَقُتِلُوْا لَأُكَفِّرَنَّ عَنْهُمْ سَيِّاٰتِهِمْ وَلَأُدْخِلَنَّهُمْ جَنّٰتٍ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا

الْأَنْهٰرُ ثَوَابًا مِّنْ عِنْدِ اللّٰهِ وَاللّٰهُ عِنْدَهُ حُسْنُ الثَّوَابِ. (۱۹۵:۳)

जवाब में इन के रब ने फ़रमाया: "मैं तुम में से किसी का अमल ज़ाया (बर्बाद) करने वाला नहीं हूं, चाहे मर्द हो या औरत, तुम सब एक दूसरे के हम जिंस हो। लिहाज़ा जिन लोगों ने मेरी ख़ातिर अपने वतन छोड़े और जो मेरी राह में अपने घरों से निकाले गए और सताए गए और मेरे लिए लड़े और मारे गए उन के सब कुसूर में माफ़ कर दूंगा और उन्हें ऐसे बाग़ों में दाख़िल करूंगा जिन के नीचे नहरें बहती होंगी यह उनकी जज़ा (इनाम) है अल्लाह के यहां और बेहतरीन जज़ा (इनाम) अल्लाह ही के पास है।"

सूर:एहज़ाब में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

إِنَّ الْمُسْلِمِيْنَ وَالْمُسْلِمٰتِ وَالْمُؤْمِنِيْنَ وَالْمُؤْمِنٰتِ وَالْقٰنِتِيْنَ
وَالْقٰنِتٰتِ وَالصّٰدِقِيْنَ وَالصّٰدِقٰتِ وَالصّٰبِرِيْنَ وَالصّٰبِرٰتِ
وَالْخٰشِعِيْنَ وَالْخٰشِعٰتِ وَالْمُتَصَدِّقِيْنَ وَالْمُتَصَدِّقٰتِ وَالصَّآئِمِيْنَ
وَالصّٰئِمٰتِ وَالْحٰفِظِيْنَ فُرُوْجَهُمْ وَالْحٰفِظٰتِ وَالذّٰكِرِيْنَ اللّٰهَ
كَثِيْرًا وَّالذّٰكِرٰتِ أَعَدَّ اللّٰهُ لَهُمْ مَّغْفِرَةً وَّأَجْرًا عَظِيْمًا. (۳۵:۳۳)

"यक़ीनन जो मर्द और जो औरतें मुस्लिम हैं, मोमिन हैं, मुतीअ फ़रमान (अल्लाह की मानने वाले) हैं, सच्चे हैं, साबिर (सबर करने वाला) हैं, अल्लाह के आगे झुकने वाले हैं, सदक़ा देने वाले हैं, रोज़े रखने वाले हैं, अपनी शर्मगाहों (गुप्तांग) की हिफ़ाज़त करने वाले हैं और अल्लाह को कसरत से याद करने वाले हैं। अल्लाह ने उन के लिए मग़फ़िरत और बड़ा अज्र (सवाब, पुण्य) रखा है।"

इस पवित्र आयत से यह हक़ीक़त साफ़ हो कर सामने आ जाती है कि इस्लाम मर्द और औरत के बीच न तो अख़लाक़ी और रूहानी ज़िम्मेदारियों के हवाले से कोई फ़र्क़ रखता है और न ही फ़राइज़ व

वाजिबात के लिहाज़ से। नमाज़ पढ़ना, रोज़ा रखना और ज़कात देना जिस तरह मर्द पर फ़र्ज़ है, इसी तरह औरत पर भी ज़रूरी है।

अलबत्ता औरत को कुछ बढ़ी हुई सहुलते ज़रूर दी गई हैं।

अय्यामे मख़्सूसा (माहवारी) के दौरान औरत को नमाज़ में छूट दी गई है यह नमाज़े इसे माफ़ हैं। इसी तरह हैज़ व निफ़ास के दौरान छूटने वाले रोज़े भी वह बाद में रख सकती है।

ऊपर बताई गई बात से यह बात साफ़ हो जाती है कि इस्लाम औरत और मर्द पर बराबर अख़लाक़ी ज़िम्मेदारियां लागू करता है और एक ही जैसी हुदूद (क़ैद व बंद) लगाता है। आप के ख़याल में इस से किया नतीजा हासिल होगा?

इस्लाम के दिए हुए औरतों के हुक़ूक़ नए हैं या पुराने?

«×☆×»

दूसरा अध्याय

इस्लाम में औरत के मआशी (आर्थिक) अधिकार

पिछले अध्याय में हम ने औरत के रूहानी हुकूक़ का जायज़ा लिया यानी यह देखा कि इस्लाम औरत को दीनी, धार्मिक और रूहानी हवालों से क्या मुक़ाम व मरतबा (स्थान, पद) देता है।

अब हम जिस विषय पर बात कर रहें हैं यानी "इस्लाम में औरतों के हुकूक़" का जायज़ा एक और पहलू से लेंगे और देखेंगे कि मआशी (आर्थिक) हवाले से औरत को इस्लाम किया हुकूक़ देता है।

इस हवाले से तुलना कीजिए तो सब से पहले यह हक़ीक़त हमारे सामने आती है कि इस्लाम ने आज से डेढ़ हज़ार साल पहले औरत को मआशी हुकूक़ दिए। इन हकूक़ में बहुत सी चीज़े शामिल हैं। मिसाल के तौर पर एक आक़िल बालिग़ (व्यस्क) मुसलमान औरत जायदाद ख़रीद सकती है, रख सकती है, बेच सकती है। चाहे वह शादीशुदा हो या ग़ैर-शादीशुदा वह बग़ैर किसी पाबंदी के अपनी मर्ज़ी से अपने माल के बारे में वह तमाम फ़ैसले कर सकती है जो एक मर्द कर सकता है।

इस्लाम ने औरत को जायदाद रखने और उसको ख़रीदने व बेचने का हक़ आज से डेढ़ हज़ार साल पहले दिया था जबकि बरतानियां में यही हक़ औरत को 1870ई० में आकर मिला।

मैं मानता हूं कि चूंकि औरत को यह हुकूक़ इस्लाम ने 1400 साल पहले दिये थे लिहाज़ा हम उन्हें औरत के "क़दीम हुकूक़" (पुराने हुकूक़) भी कह सकते हैं लेकिन क्या क़दीम होने की वजह से यह हुकूक़ पुराने हो गए हैं? क्या यह हुकूक़ नये मैयार पर पूरे नहीं उतरते?

जहां तक औरत के काम करने और रोज़ी कमाने का संबंध है, इस्लाम इस की भी पूरी इजाज़त देता है। क़ुरआन व हदीस में कहीं भी औरत के काम करने पर पाबंदी नहीं लगाई गई। शर्त यह है कि यह काम जायज़ और शरई हुदूद (इस्लामी बंदिश) का ख़याल रखते हुए किया जाए और ख़ास तौर से परदे का ख़याल किया जाए।

लेकिन क़ुदरती बात है कि इस्लाम औरत को कोई ऐसा पेशा इख़्तियार करने की इजाज़त नहीं देगा जिस में औरत की ख़ूबसूरती को ज़ाहिर किया जाए मिसाल के तौर पर अदाकारी और मॉडलिंग वग़ैरा।

इसी तरह बहुत से काम ऐसे हैं जो इस्लाम ने मर्दों के लिए भी हराम कर दिये हैं ज़ाहिर है ऐसे कामों की इजाज़त औरत को भी नहीं दी जा सकती। मिसाल के तौर पर शराब के कारोबार से संबंधित कारोबार या क़िमारबाज़ी (जुआबाज़ी) से संबंध रखने वाले पेशे। ऐसे पेशे मर्दों के लिए भी इसी तरह मना हैं जिस तरह औरतों के लिए।

एक हक़ीक़ी इस्लामी समाज़ में बहुत से पेशे ऐसे हैं जिन्हें औरतें इख़्तियार कर सकती हैं मिसाल के तौर पर तिब (चिकित्सा) के काम ही को देखिए। औरतों के इलाज के लिए हमें औरतों के इलाज की माहिर डॉक्टरों और नरसों की ज़रूरत होती है। इसी तरह तालीम के काम में ख़्वातीन टीचरों का होना ज़रूरी है।

दूसरी तरफ़ इस्लाम तमाम मआशी (आर्थिक) ज़िम्मेदारियां मर्द को सोंपता है और औरत पर कमाने की ज़िम्मेदारी बिल्कुल नहीं डालता। गोया इसे अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए काम करने की ज़रूरत नहीं। अलबत्ता अगर ऐसे हालात पैदा हो जाएं कि औरत को अपनी रोज़ी ख़ुद कमानी पड़े तो इस्लाम इसे इस से रोकता भी नहीं।

ऊपर बताए गए कामों के अलावा भी बहुत से काम हैं जो औरत कर सकती है। औरत अपने घर में भी बहुत से छोटे छोटे काम शुरू

कर सकती है।

जहां तक फ़ैक्ट्रियों और दूसरे इदारों में काम करने का संबंध है इस में कोई बहस नहीं शर्त यह है कि इन इदारों का इंतिज़ाम इस्लामी उसूलों के अनुसार चल रहा हो। यानी मर्दों और औरतों के शोबे (विभाग) बिल्कुल अलग-अलग हों। क्योंकि इस्लाम औरतों और मर्दों के मेल-जोल की बिल्कुल इजाज़त नहीं देता।

इसी तरह इस्लाम औरत को कारोबार की इजाज़त देता है लेकिन जहां ग़ैर-मर्दों से मेल-जोल का मौक़ा हो वहां इसे किसी क़रीबी मर्द मिसाल के तौर पर बाप, भाई या शोहर की मदद हासिल करना होगी।

इस सिलसिले में उम्मुल मूमिनीन हज़रत ख़दीजा (रज़ी) की मिसाल हमारे सामने है वह अपने दौर में मक्का की मालदार कारोबारी औरत में गिनी जाती थीं और नबी करीम (स.अ.व.) उनकी तरफ़ से कारोबारी ज़िम्मेदारियां संभालते थे।

एक लिहाज़ से देखा जाए इस्लाम ख़ानदान में औरत को ज़्यादा मआशी तहफ़्फ़ुज़ (आर्थिक सुरक्षा) देता है। जैसा कि मैं ने पहले भी आप के सामने बताया की, इस्लाम बुनियादी तौर पर रोज़ी कमाने की ज़िम्मेदारी ख़ानदान के मर्द पर लागू करता है। औरत पर ऐसी किसी ज़िम्मेदारी का बोझ नहीं डाला गया।

शादी से पहले यह उस के बाप भाईयों की ज़िम्मेदारी है कि वह उसकी तमाम ज़रूरयात अपनी ताक़त की हद तक पूरी करें, शादी के बाद ये ज़िम्मेदारियां उसके शोहर पर आ जाती हैं कि वह उस के खाने पीने, पहनने और रहने-सहने का इंतिज़ाम करे, अगर शोहर की मौत हो जाए तो यह ज़िम्मेदारी उसके बेटे पर आ जाती हैं। गोया जब तक कोई मर्द मौजूद है कमाने की ज़िम्मेदारी उसी की है।

शादी के मौक़े पर भी देखा जाए तो इस्लामी उसूलों की रौशनी में औरत ही फ़ायदे में रहती है। क्योंकि निकाह के मौक़े पर इसे हक़ महर की सूरत में एक तोहफ़ा मिलता है।

क़ुरआन मजीद की सूरःनिसा में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

"और औरतों के महर ख़ुशदिली के साथ (फ़र्ज़ जानते हुए) अदा करो अलबत्ता अगर वह अपनी ख़ुशी से महर का कोई हिस्सा तुम्हें माफ़ कर दे तो इसे तुम मज़े से खा सकते हो।" (4:4)

महर शरीअत इस्लामी की नज़र से एक ज़रूरी शर्त है। अगरचे अब हमारे समाज में महर की रूह (असर) को नज़रअंदाज़ किया जा रहा है। जिस शादी में लाखों रूपये ख़र्च किये जा रहे होते हैं वहां हक़ महर चंद सौ रूपये ठहरा लिया जाता है।

अगरचे यह बात ठीक है कि इस्लाम में महर की रक़म के लिए कोई कम से कम या ज़्यादा से ज़्यादा मिक़्दार (मात्रा) तय नहीं है यानी कम या ज़्यादा हद तय नहीं की गई। लेकिन बहरहाल हक़ महर दोनों तरफ़ की माली हैसियत के मुताबिक़ होना ज़रूरी है। 151रूपये या 786 रूपये हक़ महर का कोई तुक नहीं बनता।

एक दुख की बात यह है कि कुछ मुस्लिम समाज पर दूसरे लोगों के असरात कुछ ज़्यादा ही होते हैं जिस की मिसाल पाक व हिन्द का समाज है। यहां 'महर' तो बहुत कम मिक़्दार में तय किया जाता है लेकिन उम्मीद यह रखी जाती है लड़की अपने साथ बहुत सा जहेज़ ले कर आएगी। टी.वी. और फ़्रिज से लेकर कार और फ़्लेट तक की उम्मीद की जाती है।

लड़के वाले अपनी हैसियत के मुताबिक़ महर तो देते नहीं अलबत्ता अपनी हैसियत के मुताबिक़ जहेज़ की उम्मीद ज़रूर रखते हैं लड़के की कीमत तय की जाती है। अगर वह Graduate है तो एक लाख अगर डॉक्टर या इंजीनियर है तो तीन या पांच लाख। लेकिन इन बातों का इस्लाम से कोई संबंध नहीं। इस्लाम में जहेज़ का मुतालबा (मांग) किसी भी तरह जायज़ नहीं है।

अगर लड़की के वालदेन अपनी ख़ुशी से अपनी बेटी को कोई तोहफ़ा देना चाहे तो इस पर कोई पाबंदी नहीं है। लेकिन इस मक़्सद

के लिए दबाव डालना किसी सूरत जायज़ नहीं है। इस्लाम ऐसी हरकतों से सख़्ती के साथ मना करता है।

औरत के लिए कमाना ज़रूरी नहीं है। लेकिन अगर वह कुछ कमाती है तो यह मुकम्मल तौर पर उसकी ज़ाती मिल्कियत होगी। उसे अपने घर वालो पर एक पाई भी ख़र्च करने का पाबंद नहीं किया गया। वह अपनी कमाई अपनी मर्ज़ी से जैसे चाहे ख़र्च कर सकती है।

इस्लामी उसूल यह है कि बीवी कितनी ही मालदार क्यों न हो, कमाना और रोटी, कपड़े, मकान का बन्दोबस्त करना शोहर की ज़िम्मेदारी है क्योंकि रोज़ी कमाने की ज़िम्मेदारी इस्लाम सिर्फ़ और सिर्फ़ मर्द के कांधों पर डालता है और शोहर को अपनी यह ज़िम्मेदारी हर सूरत में अदा करनी होती है।

तलाक़ या अलग होने की सूरत में भी "इद्दत" के दौरान बीवी के ख़र्च का ज़िम्मेदार मर्द है। अगर बच्चे मौजूद हैं तो उनकी ज़रूरतें पूरी करना भी इसी का फ़र्ज़ है।

इस्लाम ने आज से सदियों पहले ही औरत को विरासत का हक़ दिया। अगर आप कुरआन का मुताला (अध्ययन) करें तो आप देखेंगे कि सूरःबक़रह, सूरःनिसा और सूरःमायदा में साफ़ तौर पर बता दिया गया है कि औरत बीवी की हैसियत से, मां की हैसियत से, बहन और बेटी की हैसियत से विरासत में हिस्सेदार है और अल्लाह तआला ने उनका हिस्सा कुरआन में तय फ़रमा दिया है।

मैं जानता हूं इस हवाले से सवालात उठाए जाते हैं और यह इल्ज़ाम भी लगाया जाता है कि औरतों के हवाले से इस्लाम में विरासत का क़ानून इंसाफ़ करने वाला नहीं है। लेकिन चूंकि हमारे पास वक़्त कम है लिहाज़ा मैं यहां इस हवाले से बातचीत नहीं करूंगा। इंशाअल्लाह जब इस हवाले से सवालात होंगे तो मैं तफ़सील और वज़ाहत (विस्तार) से जवाब दूंगा।

......《×☆×》......

तीसरा अध्याय

इस्लाम में औरत के समाजी अधिकार

इस अध्याय में हम समाजी हवालो से औरत को दिये गए हुकूक़ का जायज़ा लेंगे। इन हुकूक़ की तक़सीम इस तरह भी की जा सकती है।

i इस्लाम में औरत के हुकूक़ बहैसियत बेटी
ii इस्लाम में औरत के हुकूक़ बहैसियत बीवी
iii इस्लाम में औरत के हुकूक़ बहैसियत मां
iv इस्लाम में औरत के हुकूक़ बहैसियत बहन

सब से पहले हम दीन इस्लाम में बेटी को दिए गए समाजी हुकूक़ का ज़िक्र करते हैं सब से पहली बात तो यह है कि इस्लाम ने बेटी को जान की हिफ़ाज़त दी है और बेटियों को क़त्ल करने की बुरी रस्म को ख़त्म किया। इस्लाम यह हिफ़ाज़त बेटे और बेटी दोनो के लिए देता है और औलाद के क़त्ल को हराम क़रार देता है। सूरःअत्तकवीर में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

وَاِذَا الْمَوْءُ دَةُ سُئِلَتْ بِاَیِّ ذَنْبٍ قُتِلَتْ. (۸۱:۸،۹)

"और जब ज़िन्दा गाढ़ी हुई लड़की से पूछा जाएगा
कि वह किस कुसूर में मारी गई।"

अल्लाह तआला फ़रमाता है:

قُلْ تَعَالَوْا اَتْلُ مَا حَرَّمَ رَبُّكُمْ عَلَيْكُمْ اَلَّا تُشْرِكُوْا بِهٖ شَيْئًا وَّبِالْوَالِدَيْنِ
اِحْسَانًا وَلَا تَقْتُلُوْٓا اَوْلَادَكُمْ مِّنْ اِمْلَاقٍ نَحْنُ نَرْزُقُكُمْ وَاِيَّاهُمْ ط (۶:۱۵۱)

"ऐ नबी (स.अ.व.) इन से कहो कि आओ मैं तुम्हें सुनाऊ तुम्हारे रब ने तुम पर किया पाबंदियां लगाई हैं। यह कि किसी को इसके साथ शरीक न करो और वालदेन के साथ नेक सुलूक करो और अपनी औलाद को ग़रीबी के डर से क़त्ल न करो, हम तुम्हें भी रिज़्क़ (रोज़ी) देते हैं और उनको भी देंगे।"

इसी तरह का हुक्म हमें सूर:बनी इसराईल में भी मिलता है, जहां अल्लाह तआला फ़रमाता है:

وَلَا تَقْتُلُوْٓا اَوْلَادَكُمْ خَشْيَةَ اِمْلَاقٍ نَحْنُ نَرْزُقُهُمْ
وَاِيَّاكُمْ اِنَّ قَتْلَهُمْ كَانَ خِطْاً كَبِيْرًا (١٧:٣١)

"अपनी औलाद को ग़रीबी के डर से क़त्ल न करो। हम उन्हें भी रिज़्क़ देंगें और तुमको भी। हक़ीक़त में उनका क़त्ल एक बड़ी ख़ता है।"

इस्लाम से पहले, जहालत के दौर में अरब समाज का जायज़ा लिया जाए तो मालूम होता है कि वह लोग अपनी बेटियों को ज़िन्दा दफ़न कर दिया करते थे। खुदा का शुक्र है कि इस्लाम ने आकर इस मकरूह और ज़ालिमाना रस्म को ख़त्म कर दिया। अरब तहज़ीब में तो इस्लाम ने यह रस्म ख़त्म कर दी लेकिन हर जगह ऐसा नहीं है।

बद क़िस्मती से हमारे मुल्क हिन्दुस्तान में आज भी बेटियों को क़त्ल करने का सिलसिला जारी है। आलमी नशरयाती इदारे बी.बी.सी ने एक रिपोर्ट तैयार की है। इस प्रोग्राम का विषय था "उसे मरने दो" (Let Her Die-) इस विषय पर बी.बी.सी. की एक ख़ातून रिपोर्टर Emly Beckenen ने बरतानिया से हिन्दुस्तान आकर इस विषय पर जांच पड़ताल की और यह रिपोर्ट तैयार की। यह प्रोग्राम काफ़ी समय पहले स्टार टी.वी. पर भी दिखाया गया और शुक्र है बार-बार दिखाया जा रहा है। कुछ ही दिन पहले भी यह प्रोग्राम दिखाया जा चुका है।

इस प्रोग्राम में जो आंकड़े सामने आए उन से पता चलता है कि रोज़ाना तक़रीबन तीन हज़ार हमल (गर्भ) नष्ट करवाए जाते हैं।

अगर यह आंकड़े ठीक हैं तो इसका मतलब यह है कि हिन्दुस्तान

में हर साल तक़रीबन 10 लाख बेटियों को क़त्ल किया जा रहा है।

तमिलनाडू और राजिस्थान की रियासतों में ऐसे बोर्ड और पोस्टर नज़र आ रहे हैं जिन पर लिखा होता है:

"500 रूपये ख़र्च करें और 5 लाख बचाएं।"

किया आप जानते हैं इस शब्द का क्या मतलब है? कि 500 रूपये डॉक्टरी जांच पर ख़र्च करें और यह मालूम करें कि लड़का पैदा होने वाला है या लड़की। यानी जन्म से पहले ही बच्चे की जिंस (लिंग) मालूम कर लें। अगर मां के पेट में बच्ची पल रही हो तो हमल (गर्भ) ज़ाया करवा दें और बच्ची की परवरिश और उस के बाद जहेज़ की सूरत में ख़र्च होने वाले लाखों रूपये बचा लें।

तमिलनाडू के सरकारी अस्पताल की रिपोर्ट यह है कि हर दस में से पांच बेटियों को क़त्ल किया जा रहा है। लिहाज़ा शायद हमें इस बात पर हैरत नहीं होनी चाहिए कि हिन्दुस्तान में औरतों की आबादी मर्दों से कम है।

बच्चियों के क़त्ल का यह सिलसिला नया नहीं है। सदियों से यही कुछ हो रहा है। अगर आप हिन्दुस्तान में 1901ई० में होने वाली जन गणना का जायज़ा लें तो आप को मालूम होगा कि इस समय भी हिन्दुस्तान में 1000 मर्दों के मुक़ाबले में 972 औरतें थीं।

इस के बाद अगर आप 1981 की जन गणना के आंकड़ों का पता करें करें तो मालूम होगा कि यह तनासुब और बिगड़ चुका है। क्योंकि 1981ई० में 1000 मर्दों के मुक़ाबले में 934 औरतें थीं।

औरतों की आबादी का तनासुब और कम होता जा रहा है। 1991 की जनगणना में 1000 के मुक़ाबले में 927 तक जा पहुंचा है और सब से ज़्यादा अफ़सोस तो इस बात का है कि साइंस की तरक़्क़ी ने बजाए इस अमल को रोकने के इस में और सहुलत पैदा कर दी है।

अब आप ही बताएं कि इस्लाम जब औलाद के क़त्ल पर पाबंदी

लगाता है इस को छोड़ कर कि इस के औलाद लड़का है या लड़की, तो आप के नज़दीक इस्लाम का यह तरीक़ा नया ठहरता है या पुराना?

इस्लाम सिर्फ़ लड़की के क़त्ल पर ही पाबंदी नहीं लगाता। इस्लाम तो इस तरीक़े को भी सख़्ती से मना करता है कि बच्चे के जन्म पर ख़ुशियां मनाई जाएं और लड़की की ख़बर सुन कर अफ़सोस किया जाए।

क़ुरआन मजीद की सूर:नहल में अल्लाह तआला फ़रमाता है: **"जब इन में से किसी को बेटी के जन्म की ख़ुशख़बरी दी जाती है कि तो इस के चेहरे पर स्याही आ जाती है और वह बस ख़ून का सा घूंट पी कर रह जाता है। लोगो से छिपता फिरता है इस बुरी ख़बर के बाद किसी को किया मुंह दिखाए। सोचता कि ज़िल्लत (बदनामी) के साथ बेटी को लिए रहे या मिट्टी में दबा दे? देखो कैसे बुरे हुक्म हैं जो यह अल्लाह के बारे में लगाते हैं।"** (58,59:16)

आगे यह कि इस्लाम बेटी की तालीम व तरबियत अच्छे तरीक़े से करने का भी हुक्म देता है। मसनद अहमद की एक हदीस नबवी (स.अ.व.) का अर्थ कुछ यूं है, आप स.अ.व. ने फ़रमाया:

"जो व्यक्ति अपनी दो बेटियों की अच्छे तरीक़े से परवरिश करता है वह क़यामत के दिन इस तरह मेरे साथ होगा। आप (स.अ.व.) ने अपनी दो उंगलियां इकट्ठी करके दिखाई।"

एक और हदीस में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

"जिस व्यक्ति ने अपनी दो बेटियों की अच्छी तरह परवरिश की और उनका ख़याल रखा और मोहब्बत के साथ उन्हें पाला वह व्यक्ति जन्नत में दाख़िल होगा।"

इस्लाम बेटों और बेटियों में फ़र्क़ करने के भी ख़िलाफ़ है। एक हदीस में आता है:

"एक बार नबी करीम (स.अ.व.) के सामने एक शख़्स ने अपने

बेटे को प्यार किया और अपनी गोद में बिठा लिया, लेकिन अपनी बेटी के साथ ऐसा नहीं किया। नबी करीम (स.अ.व.) ने फ़रमाया कि तू ज़ालिम है तुझे चाहिए था कि अपनी बेटी को भी प्यार करता और इसे भी अपनी गोद में बिठाता।"

नबी करीम (स.अ.व.) सिर्फ़ ज़बानी आदेश नहीं देते थे। आप के ज़िन्दगी गुज़ारने के ढंग से भी अच्छे नमूनों का सुबूत मिलता है।

अब हम आते हैं औरत के बहैसियत बीवी समाजी हुक़ूक़ की तरफ़!

अगर इस्लाम से पहले के धर्मों और तहज़ीबों का जायज़ा लिया जाए तो मालूम होता है कि क़दीम (पुराने) ज़माने मे औरत को शैतान का वसीला (ज़रिया) समझा जाता था। यानी यह ख़याल किया जाता था कि शैतान औरत के ज़रिये इंसान को गुमराह करता है।

इस्लाम में औरत का तसव्वुर इस के बिल्कुल उलट है। क्योंकि इस्लाम औरत को "मोहसिना" (नेक औरत) क़रार देता है यानी शैतान से बचने का ज़रिया ख़याल करता है। जब एक मर्द की शादी एक नेक औरत से होती है तो वह औरत उस के लिए शैतानी तरग़ीबात (बहकावे) से बचने का ज़रिया बन जाती है। और उसे इस राह पर चलाने की वजह बनती है जिसे क़ुरआन ने सिराते मुसतक़ीम (सीधा रास्ता) क़रार दिया है।

इसी तरह सही बुख़ारी की रिवायत की हुई एक हदीस का अर्थ है:

"नबी करीम स.अ.व. ने फ़रमाया कि: हर मुसलमान जो निकाह की क़ुव्वत (ताक़त) रखता हो ज़रूर निकाह करे। इस तरह उनके लिए अपनी निगाह की हिफ़ाज़त और पाकदामनी बरक़रार रखना आसान हो जाएगा।"

हज़रत अनस र.त.अ. से रिवायत एक हदीस का अर्थ कुछ यूं है:

"जिस ने निकाह कर लिया उसने अपना आधा दीन महफ़ूज़ कर लिया"

यह हदीस सुन कर एक बार एक साहब कहने लगे: "किया इस का मतलब यह है कि अगर मैं दो निकाह कर लूं तो मेरा ईमान मुकम्मल हो जाएगा"?

यह साहब बिल्कुल ग़लत समझते थे। दरअस्ल हदीस में कही गई बात सौ फ़ीसद ठीक है। जब नबी करीम (स.अ.व.) ने फ़रमाया कि निकाह से आधा दीन महफ़ूज़ हो जाता है तो उनकी मुराद यह थी कि निकाह कर लेने से एक मुसलमान के लिए बद-किरदारी, बद-अख़्लाकी, ग़लत रास्ते पर चलना, ज़िनाकारी और हम जिंस परस्ती जैसे गुनाहों से बचना आसान हो जाता है और दुनिया के आधे गुनाह इन्हीं के कारण होते हैं।

शादी के बाद आप पर बीवी, शोहर, मां और बाप की हैसियत से भी ज़िम्मेदारियां आ जाती हैं। इस्लाम इन ज़िम्मेदारियों को भी बहुत अहम करार देता है और ज़ाहिर है कि यह ज़िम्मेदारियां निकाह के बाद ही पूरी की जा सकती हैं

बहरहाल आप एक शादी करें दो करें, तीन करें या चार, आप का आधा ईमान ही महफ़ूज़ होता है।

क़ुरआन में अल्लाह तआला फ़रमाता है कि मियां-बीवी के दिल में एक दूसरे के लिए मोहब्बत रख दी गई है। अगर आप सूर:रोम का मुताला (अध्ययन) करें तो अल्लाह का यह फ़रमान देखेंगे।

"और इसकी निशानियों में से यह कि इसने तुम्हारे लिए तुम्हारी जिंस से बीवियां बनाई ताकि तुम उनके पास सकून हासिल करो और तुम्हारे बीच मोहब्बत और रहमत पैदा कर दी यक़ीनन इस में बहुत सी निशानियां हैं उन लोगों के लिए जो ग़ौर व फ़िक्र करते हैं।" (21:30)

सूर:निसा की 21वीं आयत में निकाह को एक पुख़्ता एहद क़रार दिया गया है। इसी सूर:की 19वीं आयत में अल्लाह तआला फ़रमाता है।

وَعَاشِرُوْهُنَّ بِالْمَعْرُوْفِ فَاِنْ كَرِهْتُمُوْهُنَّ فَعَسٰى اَنْ
تَكْرَهُوْا شَيْـئًا وَّيَجْعَلَ اللّٰهُ فِيْهِ خَيْرًا كَثِيْرًا۔ (١٩:٤)

"उनके साथ भले तरीक़े से ज़िन्दगी बसर करो। अगर वह तुम्हें नापसंद हों तो हो सकता है कि एक चीज़ तुम्हें पसन्द न हो मगर अल्लाह ने उस में बहुत कुछ भलाई रख दी हो।"

निकाह के लिए दोनो तरफ़ के लोगों की रज़ामंदी एक ज़रूरी शर्त है यानी मर्द और औरत दोनो को इस रिश्ते के लिए राज़ी होना चाहिए। कोई भी चाहे वह लड़की का बाप ही क्यों न हो, अपनी बेटी की शादी ज़बरदस्ती नहीं कर सकता।

सही बुख़ारी की एक हदीस के मुताबिक एक औरत का निकाह इसके बाप ने इसकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ कर दिया था। यह औरत रसूल अकरम स.अ.व. के पास गई और फ़रयाद की। आप (स.अ.व.) ने उस निकाह को फ़सख़ (तोड़ना) करार दिया।

अहमद बिन हंबल रह० की रवायत की हुई एक हदीस का मफ़हूम (अर्थ) भी इस से मिलता जुलता है, जिस के मुताबिक़ एक औरत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के पास हाज़िर हुई और शिकायत कि इस के बाप ने इस की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ इसका निकाह को कर दिया है। आप स.अ.व. ने इस से फ़रमाया कि वह अगर चाहे तो इस निकाह को क़ायम रखे और चाहे तो तोड़ दे।

ऊपर बताई गई हदीसों से यह बात साफ़ हो जाती है कि इस्लाम निकाह के लिए दोनों ख़ानदानों की रज़ामंदी ज़रूरी करार देता है।

इस्लाम में औरत का तसव्वुर ख़ानदान की साख़्त (बनावट) बनाने का है बीवी की हैसियत से वह मकान को घर बनाती है। मग़रिबी दुनिया में बीवी के लिए House Wife का शब्द इस्तेमाल होता है जो ग़लत है क्योंकि उसकी शादी घर के साथ नहीं हुई। लोग इस्तलाहात (परिभाषा) बनाते हैं और इस्तेमाल करते हैं। यह नहीं सोचते कि इन

शब्दों का मतलब क्या है। "हाउस वाइफ़" का मतलब "मकान की बीवी"।

मैं उम्मीद रखता हूं कि मेरी बहनें आगे खुद को हाउस वाइफ़ (House Wife) कहने के बजाए होम मेकर (Home Maker) कहलवाना पसंद करेंगी।

इस्लाम में बीवी की हैसियत बांदी (गुलाम) की नहीं होती बल्कि उसे शोहर के साथ बिल्कुल बराबर हैसियत मिलती है।

इब्ने हंबल रह० की रवायत की हुई एक हदीस का मफ़्हूम कुछ यूं है।

"तुम में से बेहतरीन शख़्स वह है जिस का सुलूक अपने घर वालो से अच्छा है।"

इस्लाम ने मर्द और औरत की समाजी हैसियत में कोई भी फ़र्क़ नहीं रखा सिवाए एक पहलू के, और वह पहलू क़यादत (नेत्रतव) का है। जस्टिस क़ाज़ी साहब ने भी बिल्कुल सही निशानदही की के कुरआन शोहर और बीवी को मुकम्मल बराबरी की हैसियत देता है लेकिन इस ने घर या ख़ानदान का सरबराह मर्द को बनाया है।

सूर:बक़रह में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

وَلَهُنَّ مِثْلُ الَّذِىْ عَلَيْهِنَّ بِالْمَعْرُوْفِ وَلِلرِّجَالِ
عَلَيْهِنَّ دَرَجَةٌ وَاللّٰهُ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ. (٢:٢٢٨)

"औरतों के लिए भी ऐसे ही हुक़ूक़ हैं जैसे मर्दों के हुक़ूक़ उन पर हैं। अलबत्ता मर्दों को उन पर एक दर्जा हासिल है और सब पर अल्लाह ग़ालिब इक़तदार (ताक़त) रखने वाला और हकीम व दाना मौजूद है।"

यहां में जस्टिस एम.एम. क़ाज़ी से पूरी सहमती रखता हूं। यह बात बिल्कुल सही है कि ज़्यादातर मुसलमान इस आयत का अर्थ ग़लत निकालते हैं। ख़ास तौर से मर्द को एक दर्जा हासिल होने की

बात को ग़लत समझा गया है। जिस तरह से मैं ने पहले कहा कि किसी भी हुक्म को समझने के लिए पूरे कुरआन में संबंधित बयानात को सामने रखना ज़रूरी है।

सूर:निसा में अल्लाह तआला फ़रमाता है।

اَلرِّجَالُ قَوّٰمُوْنَ عَلَى النِّسَآءِ ط (٤:٣٤)

"मर्द औरतों पर क़व्वाम (ज़िम्मेदार) हैं।"

लोग ज़्यादातर "क़वाम" का तरजुमा "एक दर्जा बरतर" करते हैं। या यह कि मर्द एक दर्जा अफ़्ज़ल हैं। हालांकि हक़ीक़त यह है कि क़वाम का शब्द अक़ामा से निकला है मिसाल के तौर पर नमाज़ से पहले इक़ामत होती है जिस का मतलब होता है नमाज़ के लिए खड़े हो जाओ गोया इक़ामा का अर्थ हुआ खड़े हो जाना। और जहां तक क़वाम के अर्थ का संबंध है तो इस शब्द का अर्थ यह नहीं है कि मर्द को औरत पर एक दर्जा ज़्यादा फ़ज़ीलत हासिल है बल्कि यह हैं कि मर्द की ज़िम्मेदारियां एक दर्जा ज़्यादा हैं।

अगर आप तफ़सीर इब्ने कसीर का मुताला (अध्ययन) करें तो आप यही लिखा पाएंगे कि मर्द की ज़िम्मेदारी एक दर्जा ज़्यादा है न कि कोई ख़ास फ़ज़ीलत या बरतरी है। और यह ज़िम्मेदारी दोनो लोगों की आपसी रज़ामंदी से अदा करने की कोशिश करनी चाहिए।

सूर:बक़रह में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

هُنَّ لِبَاسٌ لَّكُمْ وَاَنْتُمْ لِبَاسٌ لَّهُنَّ ط (٢:١٨٧)

"वह तुम्हारे लिए लिबास हैं और तुम उनके लिए लिबास हो।"

लिबास का मक़सद क्या होता है? लिबास का मक़सद परदा भी होता है और ज़ीनत (ख़ूबसूरती) भी। इसी तरह मियां-बीवी को एक दूसरे के ऐबों (बुराईयां) पर परदा डालने वाला और एक दूसरे के लिए ख़ूबसूरती की वजह होना चाहिए क्योंकि यह दोनो एक दूसरे के लिए ज़रूरी हैं।

सूर:निसा में अल्लाह तआला फ़रमाता है।

وَعَاشِرُوْهُنَّ بِالْمَعْرُوْفِ فَاِنْ كَرِهْتُمُوْهُنَّ فَعَسٰى اَنْ
تَكْرَهُوْا شَيْئًا وَّيَجْعَلَ اللّٰهُ فِيْهِ خَيْرًا كَثِيْرًا. (١٩:٤)

"और उन के साथ भले तरीक़े से ज़िन्दगी बसर करो। अगर वह तुम्हें नापसंद हों तो हो सकता है कि एक चीज़ तुम्हें पसंद न हो मगर अल्लाह ने उसी में बहुत कुछ भलाई रख दी हो।"

गोया क़ुरआन के हुक्म के मुताबिक़ अगर आप को अपनी बीवी नापसंद हो फिर भी आप को उस के साथ खुश अख़लाक़ी ही से पेश आना चाहिए और बराबर की सतह पर ही रहना चाहिए।

हमारी अब तक कि बातचीत से आप को अंदाज़ा हो गया होगा कि इस्लाम औरत को बहैसियत बीवी के क्या हुक़ूक़ देता है। इस के बाद आप की क्या राय है? यह हुक़ूक़ नए हैं या पुराने?

अब हम आते हैं मां के हुक़ूक़ की तरफ़।

मुख़्तसर यह कहा जा सकता है कि इस्लाम में अल्लाह तआला की इबादत (पूजा) के बाद मां-बाप का आदर (इज्ज़त) सब से महत्वपूर्ण है। क़ुरआन मजीद में अल्लाह तआला फ़रमाता है।

"तेरे रब ने फ़ैसला कर दिया है कि तुम लोग किसी की इबादत न करो मगर सिर्फ़ इसकी। वालदेन (मां-बाप) के साथ नेक सुलूक करो। अगर तुम्हारे पास इन में से कोई एक, या दोनो, बूढ़े हो कर रहें तो उन्हें उफ़ तक न कहो न उन्हें झिड़क कर जवाब दो बल्कि उन से एहतराम (इज़्ज़त) के साथ बात करो और नरमी और रहम के साथ उनके सामने झुक कर रहो और दुआ किया करो कि "परवरदिगार, इन पर रहम फ़रमा जिस तरह उन्होंने रहमत व शफ़क़्क़त (मोहब्बत) के साथ मुझे बचपन में पाला था।" (23,24:17)

"लोगो! अपने रब से डरो जिस ने तुम को एक जान से पैदा किया और इसी जान से उसका जोड़ा बनाया और उन दोनो से बहुत से मर्द व औरत दुनिया में फैला दिए। इस ख़ुदा से डरो जिस का वास्ता दे कर तुम एक दूसरे से अपने हक़ मांगते हो और रिश्तेदारों से संबंध को बिगाड़ने से परहेज़ करो। यक़ीन जानो कि अल्लाह तुम पर निगरानी कर रहा है।" (4:1)

सूर:लुक़मान में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

"और यह हक़ीक़त है कि हम ने इंसान को अपने वालदेन (मां-बाप) का हक़ पहचानने की ख़ुद ताकीद की है। इस की मां ने तकलीफ़ पर तकलीफ़ उठा कर उसे अपने पेट में रखा और दो साल उसका दूध छूटने में लगे (इसी लिए हम ने इस को नसीहत की कि) मेरा शुक्र करो और अपने वालदेन का शुक्र बजा ला मेरी ही तरफ़ तुझे पलटना है।" (14:31)

सूर:एहक़ाफ़ में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

وَوَصَّيْنَا الْاِنْسَانَ بِوَالِدَيْهِ اِحْسٰنًا حَمَلَتْهُ اُمُّهٗ كُرْهًا
وَّوَضَعَتْهُ كُرْهًا وَحَمْلُهٗ وَفِصٰلُهٗ ثَلٰثُوْنَ شَهْرًا ط (١٥:٤٦)

"और हम ने इंसान को हिदायत की कि वह अपने वालदेन के साथ नेक बरताव करे इस की मां ने तकलीफ़ें उठाकर उसे पेट में रखा और तकलीफ़ें उठाकर ही उस को जना और उस के हमल (गर्भ) और दूध छुड़ाने में 30 महीने लग गए।"

अहमद और इब्ने माजा से रिवायत एक हदीस का अर्थ है:

"जन्नत मां के क़दमों तले है।"

इस हदीस का मतलब यह नहीं कि रास्ते पर चलते हुए जो कुछ मां के पांव तले आता है वह सब कुछ जन्नत में बदल जाता है बल्कि इस के अर्थ यह हैं कि अगर आप दीन के फ़राइज़ अदा करते

हैं और उस के बाद मां की इज्ज़त करते हैं, ख़िदमत करते हैं फ़रमाबरदारी करते हैं तो आप यक़ीनन जन्नत में जाएंगे।

सही बुख़ारी और सही मुस्लिम की एक रिवायत का अर्थ है:

"एक व्यक्ति ने रसूल अकरम (स.अ.व.) से पूछा कि मुझ पर सब से ज़्यादा हक़ किस का है? आप (स.अ.व.) ने फ़रमाया तेरी मां का।" उसने पूछा उसके बाद? आप स.अ.व. ने फ़रमाया: "तेरी मां का।" इस शख़्स ने तीसरी बार पूछा; इसके बाद? आप (स.अ.व.) ने फिर फ़रमाया: "तेरी मां का।" जब इस ने चौथी बार पूछा। आप स.अ.व. ने फ़रमाया: तेरे बाप का।"

गोया इस हदीस की रोशनी में 75 फ़ीसद इज्ज़त व एहतराम की हक़दार मां ठहरती है और 25 फ़ीसद का बाप।

या यूं कहिए कि तीन चौथाई मोहब्बत मां के हिस्से में और एक चौथाई बाप के हिस्से में आती है।

मुख़्तसर तौर पर सोने का तमग़ा मां के हिस्से में आता है चांदी का तमग़ा भी मां के हिस्से में, कांसे का तमग़ा भी मां के हिस्से में आता है और हौसला अफ़ज़ाई का इनाम बाप को मिलता है।

आप ने इस्लाम में मां के हुक़ूक़ देखे। अब फ़ैसला करें कि यह हुक़ूक़ नये हैं या पुराने?

इसी तरह इस्लाम ने औरत को बहन की हैसियत से भी बहुत इज्ज़त वाला क़रार दिया है। क़ुरआन मजीद में अल्लाह तआला फ़रमाता है।

وَالْمُؤْمِنُوْنَ وَالْمُؤْمِنٰتُ بَعْضُهُمْ اَوْلِيَاءُ بَعْضٍ ط (٩:٧١)

"मोमिन मर्द और मोमिन औरतें ये सब एक दूसरे के रफ़ीक़ हैं।"

शब्द औलिया का अर्थ यहां रफ़ीक़ और मददगार के हैं। दूसरे शब्दों में मोमिन मर्द और मोमिन औरतें आपस में बहन भाई हैं, अगर इन के बीच कोई और रिश्ता न हो तो।

औरतों को इतने समाजी हुक़ूक़ दिये गए हैं कि हम उन के हवाले से हफ़्तों बातचीत कर सकते हैं लेकिन वक़्त की कमी की वजह से हम कई मुख्य विषयों पर जैसे एक से ज़्यादा बीवियां और तलाक़ आदि पर बातचीत नहीं करेंगे क्योंकि मेरा तजरबा बताता है कि इन विषयों के हवाले से सवालात ज़रूर किये जाएंगे। इंशाअल्लाह उस वक़्त इन की वज़ाहत हो जाएगी।

...... ❖×☆×❖ ......

चौथा अध्याय

इस्लाम में औरत के शिक्षा के अधिकार

अब हम उन हुकूक़ का ज़िक्र करेंगे जो इस्लाम ने तालीम के हवाले से औरतों को दिये हैं। क़ुरआन मजीद की जो सब से पहली आयत नाज़िल हुइ वह सूरःअलक़ की पहली पांच आयात थीं। इन पवित्र आयात में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

اِقْرَاْ بِاسمِ رَبِّکَ الَّذِیْ خلقَ. خَلَقَ الْاِنْسَانَ مِنْ عَلَقٍ. اِقْرَاْ وَرَبُّکَ
الْاکْرَمُ. الَّذِیْ عَلَّمَ بِالْقَلَمِ. عَلَّمَ الْاِنْسَانَ مَالَمْ یَعْلَمْ. (۹۶:۱،۵)

"पढ़ो! (ऐ नबी स.अ.व.) अपने रब के नाम के साथ जिस ने पैदा किया। जमे हुए ख़ून के एक लोथड़े से इंसान की तख़लीक़ (पैदा करना) की पढ़ो और तुम्हारा रब बड़ा करीम है। जिस ने क़लम के ज़रिये से इल्म सिखाया। इंसान को वह इल्म दिया जिसे वह न जानता था।"

और यह बात ज़हन में रखिए कि बात आज से 1400 साल पहले की हो रही है जब औरतों को किसी भी क़िस्म के हुकूक़ हासिल नहीं थे। इनकी हैसियत ज़ाती जायदाद से बढ़कर न थी। इस्लाम ने उस वक़्त औरतों की तालीम पर ज़ोर दिया जिस वक़्त दुनिया में औरतों की तालीम का कोई तसव्वुर ही मौजूद नहीं था।

जैसा कि पहले कहा गया सहाबा (र.त.अ.) अजमईन में हमें कई आलिमा औरतों की मिसाले नज़र आती हैं। सब से एहम मिसाल तो हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (र.त.अ.) की है। आप (र.त.अ) हज़रत अबू बकर सिद्दीक़ (र.अ.त.) की बेटी थीं और उम्हातुल मूमीनीन में

शामिल थी। हज़रत आयशा सिद्दीक़ा से सहाबा-ए-किराम (र.त.अ.) अजमईन और ख़ुलफ़ा-ए-राशीदीन तक हिदायत और राहनुमाई हासिल करते रहे।

आप के मशहूर शागिर्द उरूह बिन ज़ुबैर र.त.अ. थे वह कहते हैं:

"मैं ने तफ़सीर क़ुरआन, फ़राइज़, हलाल व हराम, अदब व शेयर और तारीख़े अरब का हज़रत आयशा (र.त.अ.) से बढ़ कर कोई आलिम नहीं देखा।"

वह न सिर्फ़ ये कि उलूमे दीनिया (धार्मिक ज्ञान) की माहिर थीं बल्कि दूसरे उलूम जैसे तिब् (चिकित्सा) पर भी महारत रखती थीं। नबी करीम स.अ.व. के पास आने वाले लोग जब हुज़ूर स.अ.व. से बातचीत करते थे तो आप उस बातचीत से हासिल होने वाली मालूमात को ज़हन में बिठा लेती थीं।

उन्हें इल्म रियाज़ी (हिसाब) से भी दिलचस्पी थी। और कई बार ऐसा हुआ कि सहाबा र.त.अ ने "मीरास" (विरासत) के मसाइल आप से मालूम किये और आप र.त.अन्हा ने हर वारिस का हिस्सा शरीअत के मुताबिक़ उन्हें बताया।

उनके बारे में कहा जाता है कि दूसरे सहाबा के अलावा आपको ख़ुलफ़ाए राशीदीन र.त.अन्हुम की रहनुमाई का भी मोक़ा मिला। कई बार आपने हज़रत अबू हुरेरा र.त.अ. की रहनुमाई फ़रमाई। हज़रत आयशा सिद्दीक़ा र.त.अन्हा से तक़रीबन 2210 हदीसें हम तक पहुंची हैं।

हज़रत अबू मूसा अशअरी (र.त.अ.) जो ख़ुद एक बहुत बड़े आलिम हैं, फ़रमाते हैं:

"जब सहाबा-ए-किराम (र.त.अ.) को किसी मुआमले के बारे में इल्म न होता तो हम हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (र.त.अन्हा) से मालूम करते और वह हमारी रहनुमाई करतीं।"

आप (र.त.अ.) के बारे में कहा जाता है कि 88 उलमा ने आप से तालीम हासिल की। यानी आप को "उस्ताज़ुल असातज़ा" (आलिमों का उस्ताद) का स्थान हासिल है।

हज़रत आयशा सिद्दीक़ा र.त.अन्हा के अलावा भी कई सहाबियात के इल्म व फ़ज़्ल की गवाही मिलती है। उम्मुल मूमीनीन हज़रत सफ़िया (र.त.अन्हा) को भी इल्म फ़िक्ह में महारत हासिल थी। इमाम नौवी रह० के कहने के अनुसार वह अपने वक़्त की सब से बड़ी आलिम औरत थीं।

इसी तरह एक और मिसाल उम्मुल मूमीनीन हज़रत उम सलमा (र.त.अन्हा) की है। उन के बारे में इब्न हिज़्रह का बयान है कि 32 उलमा ने आप से तालीम हासिल की। हज़रत फ़ातिमा बिन्त कैस रज़ी अल्लाह अन्हा के बारे में कहा जाता है कि एक दिन किसी मसले पर हज़रत आयशा र.त.अन्हा और हज़रत उमर र.त.अन्हा की आप से सारा दिन बहस होती रही, लेकिन वह हज़रत फ़ातिमा र.त.अन्हा को ग़लत साबित नहीं कर सके।

इमाम नौवी रहमतुल्लाह का बयान है कि फ़ातिमा बिन्त कैस शुरू के मुहाजीरीन में शामिल थीं और बड़ा ज्ञान रखती थीं।

हज़रत अनस र.त.अ. की मां उम सलीम (र.त.अन्हा) भी बेहतरीन आलिम औरत थीं और दावत में खुसूसी महारत रखती थीं।

हज़रत हसन र.त.अन्हा की पोती सईदा नफ़ीसा के बारे में कहा जाता है कि इमाम शाफ़ई रहमतुल्लाह ने भी आप से तालीम हासिल की और इमाम शाफ़ई रहमतुल्लाह वह आलिम हैं जिन्होंने फ़िक्ह इस्लामी के चार बड़े मकातिब फ़िक्र में से एक का आग़ाज़ किया।

इसी तरह की बेशुमार मिसाले मौजूद हैं। जैसे उम्मुल दरदा (र.त.अन्हा) जो हज़रत अबू दरदा की बीवी थीं, उन के बारे में कहा

जाता है कि उन्हें उलूम अक़्लिया में कमाल हासिल था। उन के इल्म व फ़ज़्ल की गवाही इमाम बुख़ारी रहमतुल्लाह जैसे आलिम ने भी दी है।

और कई मिसाले भी पेश की जा सकती हैं। और यह ज़िक्र उस दौर का हो रहा है जब औरत के साथ बहुत बुरा सुलूक किया जाता था। जब लोग बेटियों को पैदा होते ही ज़िन्दा दफ़्ना दिया करते थे। और इसी दौर में हम यह भी देखते हैं कि मुसलमानों में न सिर्फ़ दीन का इल्म बल्कि तिब् (चिकित्सा) और साइंस के ज्ञान को जानने वाली औरतें भी मौजूद थीं।

और इस की वजह सिर्फ़ यह थी कि इस्लाम हर औरत को तालीम हासिल करने का हक़ देता है। इस सूरते हाल में आप की राय क्या बनती है?

इस्लाम के दिये हुए औरतों के हुक़ूक़ नये हैं या पुराने?

इस्लाम में औरत के क़ानूनी अधिकार

इस्लामी क़ानून के लिहाज़ से मर्द और औरत बिल्कुल बराबर हैं। इस्लामी शरीअत मर्द और औरत की जान और माल को बराबर सुरक्षा देता है। अगर कोई मर्द किसी औरत को क़त्ल कर दे तो उसे भी सज़ा-ए-मौत दी जाएगी। यानी इसे भी क़िसास (ख़ून का बदला ख़ून) में क़त्ल किया जाएगा जैसे किसी मर्द के क़ातिल को सज़ा-ए-मौत मिलती है और अगर कोई औरत क़त्ल की क़ुसूरवार हुई तो उसके लिए भी वही सज़ा है।

सूर:बक़रह में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

يَآيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا كُتِبَ عَلَيْكُمُ الْقِصَاصُ فِى الْقَتْلٰى اَلْحُرُّ بِالْحُرِّ وَالْعَبْدُ بِالْعَبْدِ وَالْاُنْثٰى بِالْاُنْثٰى فَمَنْ عُفِىَ لَهٗ مِنْ اَخِيْهِ شَىْءٌ فَاتِّبَاعٌ بِالْمَعْرُوْفِ وَاَدَآءٌ اِلَيْهِ بِاِحْسَانٍ ذٰلِكَ تَخْفِيْفٌ مِّنْ رَّبِّكُمْ وَرَحْمَةٌ فَمَنِ اعْتَدٰى بَعْدَ ذٰلِكَ فَلَهٗ عَذَابٌ اَلِيْمٌ. وَلَكُمْ فِى الْقِصَاصِ حَيٰوةٌ يّٰاُولِى الْاَلْبَابِ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُوْنَ. (٢:١٧٨،١٧٩)

"ऐ लोगो! जो ईमान लाए हो, तुम्हारे लिए क़त्ल के मुक़दमों में क़िसास (ख़ून का बदला ख़ून) का हुक्म लिख दिया गया है। आज़ाद आदमी ने क़त्ल किया हो तो उस आज़ाद ही से बदला लिया जाए, ग़ुलाम क़ातिल हो तो वह ग़ुलाम ही क़त्ल किया जाए और औरत उस जुर्म की क़ुसूरवार हो तो उस औरत ही से क़िसास लिया जाए। हां, अगर किसी क़ातिल के साथ उस का भाई कुछ नरमी करने के लिए तैयार हो तो भले तरीक़े के मुताबिक़ ख़ून की क़ीमत का तसफ़िया (फ़ैसला) होना चाहिए। और क़ातिल को चाहिए कि सच्चाई के साथ ख़ून की क़ीमत अदा करे। यह तुम्हारे रब की तरफ़ से तख़्फ़ीफ़ (छूट) और रहमत है। इस पर भी जो ज़्यादती करे उसके लिए दर्दनाक सज़ा है। अक़्ल और समझ रखने वालो! तुम्हारे लिए क़िसास (ख़ून का बदला ख़ून) में ज़िन्दगी है। उम्मीद है तुम इस क़ानून की ख़िलाफ़ वर्ज़ी से परहेज़ करोगे।"

इस्लामी क़ानून में जिस्मानी नुक़सान पहुंचाने की सज़ा बिना किसी फ़र्क़ के एक ही है और इस सिलसिले में मर्द और औरत में कोई फ़र्क़ नहीं किया जाता।

इस्लामी क़ानून में क़िसास (ख़ून का बदला) का जायज़ा लिया जाए तो यह बात सामने आती है कि अगर किसी मक़तूल (जिसका क़त्ल हुआ हो) की वारिस औरत हो तो उसे वही हुक़ूक़ हासिल हैं जो किसी मर्द वारिस को हासिल होते हैं। वह अगर चाहे तो क़िसास ले सकती है चाहे तो "दीत" (ख़ून की क़ीमत) हासिल कर सकती है। इस सिलसिले में पूरी आज़ादी हासिल है।

अगर वारिसों में इख़्तिलाफ़ हो, कुछ वारिस दीत (ख़ून की क़ीमत) क़ुबूल करने के हक़ में हों और कुछ क़िसास में क़ातिल के क़त्ल किये जाने की ज़िद करें तो इस सूरत में क़त्ल करने से रोका जाएगा और दीत दिलवाई जाएगी। लेकिन यहां भी औरत और मर्द की राय को बराबर एहमियत हासिल होगी और बहैसियत वारिस औरत और मर्द में कोई फ़र्क़ नहीं किया जाएगा।

जहां तक दूसरे जुर्मों का संबंध है वहां भी औरत और मर्द में कोई फ़र्क़ नहीं किया जाएगा।

सूर:मायदा में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

وَالسَّارِقُ وَالسَّارِقَةُفَاقْطَعُوْا اَيْدِيَهُمَا جَزَآءً بِمَا
كَسَبَا نَكَالًا مِّنَ اللّٰهِ وَاللّٰهُ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ. (٣٨:٥)

"और चोर चाहे औरत हो या मर्द दोनो के हाथ काट दो यह उनकी कमाई का बदला है। और अल्लाह की तरफ़ से इबरतनाक (ख़ौफ़ पैदा करने वाली) सज़ा। अल्लाह की क़ुदरत सब पर ग़ालिब (ज़बरदस्त) है और वह अक़्ल वाला और देखने वाला है।

इस पवित्र आयत से मालूम होता है कि क़त्ल की सज़ा मर्द और औरत दोनो के लिए है। जो भी चोरी का क़ुसूरवार होगा उसे सज़ा मिलेगी और जिंस (लिंग) के हवाले से कोई फ़र्क़ नही किया जाएगा।

इसी तरह सूर:नूर में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

اَلزَّانِيَةُ وَالزَّانِىْ فَاجْلِدُوْا كُلَّ وَاحِدٍ مِّنْهُمَا مِأَةَ جَلْدَةٍ وَّلَا
تَاْخُذْكُمْ بِهِمَا رَافَةٌ فِىْ دِيْنِ اللّٰهِ اِنْ كُنْتُمْ تُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ
وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَلْيَشْهَدْ عَذَابَهُمَا طَائِفَةٌ مِنَ الْمُؤْمِنِيْنَ. (٢:٢٤)

"ज़निया (बुरे काम करने वाली औरत) और ज़ानी (बुरे काम करने वाला मर्द) दोनो में से हर एक को 100 कोड़े मारो। और उन पर तरस खाने का जज़्बा अल्लाह के दीन के मुआमले में तुमको रोकने वाला न हो अगर तुम अल्लाह तआला और क़यामत के दिन पर ईमान रखते हो, और उनको सज़ा देते वक़्त ईमान वालो का एक गिरोह मौजूद हो।"

यहां भी जिंस (लिंग) के हवाले से कोई फ़र्क़ नही किया गया। कुंवारा ज़ानी मर्द हो या औरत इस्लामी शरीअत दोनो के लिए सज़ा मुक़र्रर करती है सौ कोड़े ज़ानी मर्द को भी लगाए जाएंगे और ज़ानिया औरत को भी। और शादी शुदा होने की सूरत में रजम (पत्थर मार-मार कर हलाक करना) किया जाएगा।

अब आते हैं क़ानून शहादत (गवाही) की तरफ़। इस्लाम ने औरत

को गवाही का हक़ दिया है और तसव्वुर कीजिए कि यह हक़ इस्लाम ने औरत को आज से 1400 साल पहले दिया था।

यहूदी रबी हज़रात 20वीं सदी सोच-विचार कर रहे थे कि औरत को गवाही देने का हक़ होना चाहिए या नहीं? जब कि इस्लाम औरत को यह हक़ डेढ़ हज़ार साल पहले दे चुका था।

सूर:नूर में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

وَالَّذِيْنَ يَرْمُوْنَ الْمُحْصَنَاتِ ثُمَّ لَمْ يَاْتُوْا بِاَرْبَعَةِ شُهَدَاءَ
فَاجْلِدُوْهُمْ ثَمَانِيْنَ جَلْدَةً وَّلَاتَقْبَلُوْا لَهُمْ شَهَادَةً اَبَدًا. (٤:٢٤)

"और जो लोग पाक दामन औरतों पर इल्ज़ाम लगाएं और चार गवाह ले कर न आएं, उन को अस्सी कोड़े मारो और उनकी शहादत (गवाही) कभी क़ुबूल न करो और वह ख़ुद ही फ़ासिक़ (बुरे काम करने वाला) हैं।"

एक आम जुर्म में दो गवाहो की शहादत काफ़ी होती है जबकि बड़े जुर्मो में चार गवाहों की गवाही ज़रूरी है। इस्लाम ने किसी औरत पर इल्ज़ाम लगाने के मामले में चार गवाहों की शहादत ज़रूरी बताई है। मानो इस्लाम की नज़र में किसी औरत की इज़्ज़त पर उंगली उठाना एक बहुत बड़ा जुर्म है।

आज के नए समाज में हम देखते हैं कि जिस का जी चाहता है शरीफ़ औरतों पर इल्ज़ाम लगाने लगता है। इन के किरदार और अख़लाक़ के बारे में जो जिस के दिल में आता है कहे जाता है। लेकिन एक इस्लामी रियासत (राज्य) में अगर आप ने किसी औरत को बदकिरदार कह दिया तो फिर आप को अपना इल्ज़ाम साबित करना होगा और अदालत में चार गवाह पेश करने होंगे, अगर आप ऐसा न कर पाए तो फिर न सिर्फ़ आप को अस्सी (80) कोड़े पड़ेंगे बल्कि आइन्दा के लिए किसी मुआमले में भी आपकी शहादत (गवाही) क़ुबूल नहीं की जाएगी।

इस से अन्दाज़ा होता है कि इस्लाम औरत की इज़्ज़त को कितनी अहमियत देता है। ज़्यादातर होता यह है कि शादी के बाद औरत शौहर का नाम अपने नाम के साथ लिखती है लेकिन इस्लाम ने इस मुआमले में भी इसे आज़ादी दी है। वह चाहे तो शौहर का नाम अपने नाम के साथ लिख सकती है और चाहे तो बाप का नाम ही इस्तेमाल कर सकती है। बल्कि शादी से पहले वाले नाम ही को अहमियत दी जाती है। आज भी बहुत से मुस्लिम समाज में हम देखते हैं कि शादी के बाद भी औरत अपना पहला नाम ही बरक़रार रखती है और इस की वजह इस्लाम में औरत और मर्द का बराबरी का दर्जा है।

इस सूरतेहाल में आप क्या समझते हैं?

इस्लाम में औरत के हुकूक़ नए हैं या पुराने?

❖×☆×❖

छटा अध्याय

इस्लाम में औरत के सियासी अधिकार

सूर:तौबा में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

وَالْمُؤْمِنُوْنَ وَالْمُؤْمِنٰتِ بَعْضُهُمْ اَوْلِيَآءُ بَعْضٍ يَاْمُرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ
وَيَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ وَيُقِيْمُوْنَ الصَّلٰوةَ وَيُؤْتُوْنَ الزَّكٰوةَ وَيُطِيْعُوْنَ
اللّٰهَ وَرَسُوْلَهٗ اُولٰٓئِكَ سَيَرْحَمُهُمُ اللّٰهُ اِنَّ اللّٰهَ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ. (٧١:٩)

"मौमिन मर्द और मोमिन औरतें, यह सब एक दूसरे के रफ़ीक़ (साथी) हैं, भलाई का हुक्म देते और बुराई से रोकते हैं। नमाज़ क़ायम करते हैं, ज़कात देते हैं और अल्लाह और उसके रसूल (स.अ.व.) की फ़रमाबरदारी करते हैं। यह वह लोग हैं जिन पर अल्लाह की रहमत नाज़िल (उतरना) हो कर रहेगी। यक़ीनन अल्लाह सब पर ग़ालिब और अक़्ल वाला है।"

मर्द और औरत सिर्फ़ समाजी सतह पर ही नहीं बल्कि सियासी सतह पर भी एक दूसरे के लिए मददगार हैं। इस्लाम औरत को सियासी मुआमलात में अपनी राय का इज़्हार करने का हक़ भी देता है।

सूर:मुमतहना में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

يٰٓاَيُّهَا النَّبِيُّ اِذَا جَآئَكَ الْمُؤْمِنَاتُ يُبَايِعْنَكَ عَلٰٓى اَنْ لَّا يُشْرِكْنَ
بِاللّٰهِ شَيْئًا وَّلَا يَسْرِقْنَ وَلَا يَزْنِيْنَ وَلَا يَقْتُلْنَ اَوْلَادَهُنَّ وَلَا يَاْتِيْنَ
بِبُهْتَانٍ يَفْتَرِيْنَهٗ بَيْنَ اَيْدِيْهِنَّ وَاَرْجُلِهِنَّ وَلَا يَعْصِيْنَكَ فِيْ مَعْرُوْفٍ
فَبَايِعْهُنَّ وَاسْتَغْفِرْ لَهُنَّ اللّٰهَ اِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ (١٢:٦٠)

"ऐ नबी (स.अ.व.)! जब तुम्हारे पास मौमिन औरतें इताअत (फ़रमाबरदारी) के लिए आएं और इस बात का वादा करें

कि वह अल्लाह के साथ किसी चीज़ को शरीक न करेंगी, चोरी न करेंगी, ज़िना (बुरे काम) न करेंगी, अपनी औलाद को क़त्ल न करेंगे, अपने हाथ पांव के आगे कोई इल्ज़ाम घढ़ कर न लाएंगी और नेक बात में तुम्हारी न फ़रमानी न करेंगी तो उन से बैअत (मुरीदी, फ़रमाबरदारी) कर लो और उनके हक़ में अल्लाह से दुआए मग़्फ़िरत करो, यक़ीनन अल्लाह माफ़ फ़रमाने वाला और रहम करने वाला है।"

यहां बैअत का शब्द इस्तेमाल हुआ है और बैअत के शब्द में आज कल के इलैकशन का मफ़्हूम (अर्थ) भी शामिल है। क्योंकि हुज़ूर अकरम (स.अ.व.) अल्लाह के रसूल भी थे और सरबराहे मुम्लिकत (कायनात के सरदार भी थे)। और बैअत से मुराद उन्हें सरबराहे हुकूमत मानना था। इस तरह इस्लाम ने इसी दौर में औरत को वोट देने का हक़ भी दे दिया था।

इसी तरह इस्लाम ने औरतों के क़ानूनसाज़ी में हिस्सा लेने की इजाज़त भी दी है, एक मशहूर रिवायत है:

"हज़रत उमर (र.त.अ.) एक बार सहाबा-ए-किराम के साथ महर के हक़ के मस्ले पर बातचीत कर रहे थे और हज़रत उमर (र.त.अ.) की ख़्वाहिश थी कि महर की हद मुक़र्रर कर दी जाए क्योंकि नौजवानों के लिए निकाह करना मुश्किल होता जा रहा था। पीछे से एक बूढ़ी औरत उठी और उस ने क़ुरआन मजीद की सूर:निसा की 20वीं आयत पढ़ी:

وَاِنْ اَرَدْتُّمُ اسْتِبْدَالَ زَوْجٍ مَّكَانَ زَوْجٍ وَّاٰتَيْتُمْ اِحْدٰهُنَّ قِنْطَارًا فَلَا تَاْخُذُوْ مِنْهُ شَيْئًا.

"और अगर तुम एक बीवी की जगह दूसरी बीवी लाने का इरादा कर ही लो तो चाहे तुम ने उसे ढेर सारा माल ही क्यों न दिया हो, इस में से कुछ वापिस न लेना।"

इस के बाद उस औरत ने कहा कि जब क़ुरआन यह इजाज़त देता है कि महर में माल का ढेर भी दिया जा सकता है तो उमर (र.त.अ.) कोन होता है हद मुक़र्रर करने वाला।

यह सुन कर हज़रत उमर (र.त.अ.) ने तुरन्त अपनी राय को बदला और कहने लगे कि उमर ग़लत था और यह औरत सही कह रही थी।

अंदाज़ा कीजिए कि आम औरत को भी इतना हक़ हासिल था। वह यक़ीनन एक आम औरत थी। अगर वह कोई मशहूर औरत होती तो यक़ीनन उसका नाम लिया जाता लेकिन चूंकि नाम नहीं लिया गया इस लिए पता चलता है कि यह कोई आम औरत थी, और फिर भी इसे यह हक़ हासिल था कि वह ख़लीफ़-ए-वक़्त से अलग राय देने की हिम्मत कर सके और इस पर ऐतराज़ कर सके।

अगर आज कल के माहौल में बात की जाए तो हम कहेंगे कि इस औरत ने "क़ानून की ख़िलाफ़वर्ज़ी" पर ऐतराज़ किया था। क्योंकि मुसलमानों का क़ानून तो क़ुरआन है। इस वाक़िये से मालूम होता है कि इस्लाम औरत को क़ानून साज़ी में शिरकत का भी हक़ देता है।

मुसलमान औरतें जंग के मैदान में भी ख़िदमात अंजाम देती रहीं हैं बुख़ारी शरीफ़ का एक पूरा बाब (अध्याय) जिहाद में काम करने वाली औरतों के बारे में है। जिस से पता चलता है कि औरतें जंग के मैदान में मुजाहिदीन को पानी पिलाती रहीं और ज़ख़्मी मुजाहिदीन का इलाज भी करती रहीं।

उहद् के मैदान में जिन सहाबा-ए-किराम (र.त.अ.) को नबी करीम (स.अ.व.) की हिफ़ाज़त की ख़ुश नसीबी हासिल हुई उन में एक सहाबिया हज़रत नसीबा (र.त.अन्हा) का नाम भी शामिल है।

लेकिन चूंकि इस्लाम ने मर्द को औरत का मुहाफ़िज़ क़रार दिया है इस लिए आम हालात में औरत को जंग के मैदान में नहीं भेजा जाना चाहिए। सिर्फ़ ख़ास हालत में जब कोई और रास्ता न हो तो उस सूरत में औरत को जंग के मैदान में ख़िदमात अंजाम देनी चाहिए। आम हालात में जिहाद मर्द ही की ज़िम्मेदारी है और यह ज़िम्मेदारी इसी को अदा करनी चाहिए दूसरी सूरत में वही कुछ होगा जो कुछ हमने अमरीका में होते हुए देखा।

अमरीका में औरतों को जंग के मैदान में आने की इजाज़त 1901ई० में दी गई लेकिन उन्हें इस लड़ाई में शरीक होने की इजाज़त नहीं थी। वह नर्स के तौर पर काम करती थीं। उसके बाद औरतों की तेहरीक (आंदोलन) सामने आई और इस तेहरीक की तरफ़ से यह मांग सामने आई कि औरतों को भी अमली तौर पर मैदान-ए-जंग में आने की इजाज़त दी जाए। 1973ई० से यह मांग सामने आई और 1976ई० में हुकूमत अमरीका ने फ़ौजी औरतों को जंग के दौरान बाक़ायदा मैदान में लड़ने की इजाज़त दे दी।

इसके बाद क्या हुआ? 23 अप्रैल 1993ई० को जारी होने वाली एक रिपोर्ट के मुताबिक़ एक फ़ौजी समूह के दौरान 90 लोगों को जिंसी (शारिरिक) तौर पर हिरासां (पीड़ित) किया गया जिन में से 83 औरतें थीं। 117 फ़ौजियों के ख़िलाफ़ कार्यवाई की गई। ज़रा अंदाज़ा कीजिए कि एक समूह के दौरान 83 औरतों पर जिंसी हमले हुए 117 लोग उन हमलो में शरीक थे। क्या आप जानते हैं उन लोगों ने क्या किया?

उन्होंने ने औरतों के लिबास फाड़ दिए, उन्हें नंगा करने पर मजबूर कर दिया गया, उनके साथ सब के सामने ज़्यादती की गई।

क्या यह "औरतों के हुक़ूक़" हैं? क्या औरतों के हुक़ूक़ इसी का नाम है? अगर उन लोगों के ख़याल में यही औरतों के हुक़ूक़ हैं तो हम इन हुक़ूक़ को दूर से ही सलाम करते हैं हमें इनकी ज़रूरत नहीं।

हम नहीं चाहते कि हमारी मांओ, बहनों और बेटियों को इस सूरते हाल का सामना करना पड़े। अमरीका में इस मुआमले के बाद आवाज़ उठाई गई। पारलिमेंट में इस हवाले से बातचीत हुई और उस वक़्त के राष्ट्रपति बिल-किलिन्टन ने इस वाक़िये पर माफ़ी मांगी और ऐलान किया कि ज़िम्मेदारों के ख़िलाफ़ ज़रूर कार्यावाई की जाएगी।

और यह तो हम सब जानते हैं कि जब सियासतदान कहते हैं कि ज़रूर कार्यावाई की जाएगी तो क्या होता है?

तो बात यह है कि इस्लाम बहुत मजबूरी के हालात में ही औरतों को मैदान-ए-जंग में आने की इजाज़त देता है। लेकिन वहां भी उन्हें इस्लामी उसूलों की पासदारी करनी होगी। परदा और दूसरे इस्लामी उसूलों और अख़लाक़ी मैयार की पाबंदी और पासदारी करना होगी।

अपनी बात समेटने से पहले मैं एक मिसाल पेश करना चाहूंगा। मैं ने बिल्कुल शुरू में यह बात साफ़ की थी कि इस्लाम मर्द और औरत की बराबरी पर यक़ीन रखता है लेकिन यकसानियत (एक जैसा होना) पर नहीं। बराबरी, यकसानियत को नहीं कहते।

मान लीजिए एक किलास के दो विद्यार्थी पहली पोज़िशन पर आ जाते हैं। विद्यार्थी **"A"** के नम्बर भी 80 फ़ीसद हैं और विद्यार्थी **"B"** के नम्बर भी 80 फ़ीसद हैं। कुल विद्यार्थियों की संख्या सैंकड़ों में है। लेकिन यह दो विद्यार्थी "ए" और "बी" अव्वल आए हैं।

अब आप सवालात के परचे का जायज़ा लेते हैं। परचे में कुल दस सवालात हैं। हर सवाल के दस नम्बर हैं।

पहले सवाल में विद्यार्थी **A** ने 10 में से 9 नम्बर लिए हैं और विद्यार्थी **B** ने 10 में से 7 नम्बर लिए लिहाज़ा पहले सवाल के जवाब के मामले में विद्ययार्थी **A** बेहतर है।

दूसरे सवाल में विद्यार्थी **A** ने 10 में से 7 और विद्यार्थी **B** ने 10 में से 9 नम्बर लिए हैं। चूनांचे दूसरे जवाब में विद्यार्थी **B**, विद्यार्थी **A** से बेहतर और बरतर है।

तीसरे सवाल में दोनो विद्यार्थीयों ने 10 में से 8 नम्बर लिए हैं लिहाज़ा यहां दोनो विद्यार्थी बराबर हैं।

जब तमाम सवालों के नम्बर जमा किए जाएंगे तो दोनों के नम्बर 80 हैं लिहाज़ा मुख़्तसर यह कहा जा सकता है कि किसी सवाल में **A** और **B** दोनों के नम्बर बराबर हैं किसी में **A** के ज़्यादा हैं और किसी में **B** के ज़्यादा हैं लेकिन कुल मिला कर दोनो विद्यार्थियों के

नम्बर बराबर हैं।

इसी तरह का मुआमला मर्द और औरत का है। कुछ मुआमलात में मर्द बरतर है और कुछ में औरत। लेकिन मजमूई तौर पर बराबरी है। मिसाल के तौर पर अल्लाह तआला ने मर्द को ज़्यादा जिस्मानी ताक़त दी है। मान लीजिए आप के घर में कोई चोर आ जाता है। किया आप यह पसंद करेंगे कि आप की मां, बहन, बीवी या बेटी को उस चोर से मुक़ाबला करना पड़े आप मर्द और औरत की बराबरी पर कितना ही यक़ीन क्यों न रखते हों फिर भी चोर का मुक़ाबला आप ही करेंगे। घर की औरतें आप की मदद तो कर सकती हैं। लेकिन आप को ही आगे बढ़ कर उस चोर के मुक़ाबले में आना होगा क्योंकि जिस्मानी ताक़त आपको ज़्यादा दी गई है लिहाज़ा क़ुदरती तौर पर यह आपका फ़र्ज़ बनता है।

इस मिसाल में हम ने देखा कि जिस्मानी ताक़त के लिहाज़ से मर्द को औरत पर एक दर्जा बरतरी हासिल है।

अब हम एक और मिसाल पेश करते हैं। इस्लाम ने वालदेन की इज़्ज़त और एहतराम पर बहुत ज़्यादा ज़ोर दिया है लेकिन वालिद (बाप) और मां को इस मुआमले में बराबर क़रार नही दिया गया बल्कि मां के इज़्ज़त पर तीन गुना ज़्यादा ज़ोर दिया गया है।

मानो इस मुआमले में औरत को मर्द पर एक दर्जा बरतरी हासिल है इस तरह यह बात साफ़ हो जाती है कि औरत और मर्द बराबर ज़रूर हैं लेकिन हर लिहाज़ से यकसां (एक जैसे होना) नहीं हैं।

हम ने अपनी बातचीत को बहुत मुख़्तसर रखने की कोशिश की है। वक़्त कम होने की वजह से तफ़सील (विस्तार) पेश नहीं की जा सकीं और यकसां तौर पर सूरतेहाल आप के सामने साफ़ की गई और इस्लाम में औरतों के हुक़ूक़ के हवाले से ख़ास बातों की वज़ाहत (स्पष्टिकरण) आप के सामने पेश की गई।

अब जो कुछ मुस्लिम समाज में अमली तौर पर होता है वह एक अलग मुआमला है। बहुत से मुस्लिम समाज में औरतों को उनके हुक़ूक़ नहीं मिलते क्योंकि यह समाज क़ुरआन व सुन्नत की तालीमात से दूर हट चुके हैं।

इस सूरतेहाल की ज़िम्मेदारी मग़रिबी समाज पर भी आती है क्योंकि मग़रिब में औरत की सूरतेहाल को देखते हुए रद्देअमल में कुछ समाज औरत के मुआमले में ज़रूरत से ज़्यादा सख़्त हो गए। कुछ समाजों में मग़रिब की पैरवी भी की गई और मग़रिबी तहज़ीब को अपनाया गया ज़ाहिर है कि यह दूसरी इन्तिहा है।

आख़िर में मग़रिबी समाज को यह बताना चाहूंगा कि आप अगर क़ुरआन व सुन्नत में औरत को दिये गए हुक़ूक़ का तजज़िया करें तो आप को मालूम होगा कि इस्लाम औरत को जो हुक़ूक़ देता है वह फ़रसूदा (पुराने) नहीं बल्कि नए तक़ाज़ों से मिलते-जुलते हैं।

मैं आख़िर में अपने तमाम दोस्तों और मददगारों का शुक्रिया अदा करना चाहूंगा, मैं आज जो कुछ हूं अगर उसका सबब किसी एक इंसान को क़रार दिया जाए तो वह होंगी मेरी वालिदा मिसेज़ रौशन नाइक क्योंकि यह उनकी मोहब्बत, तवज्जह (ध्यान) और रहनुमाई ही थी जिस की वजह से मैं आज इस मुक़ाम पर हूं।

यह नाइंसाफ़ी होगी अगर मैं अपने वालिद डॉक्टर अब्दुल करीम नाइक का ज़िक्र न करूं और इसी तरह मैं दूसरे रिश्तेदार ख़ास तौर पर मेरे भाई डॉक्टर मुहम्मद नाइक।

मैं अपनी बीवी का भी शुक्रिया अदा करना चाहूंगा जो शादी के बाद से लगातार मेरी हिम्मत बढ़ा रहीं हैं।

शुक्रिया

......❖×☆×❖......

भाग-2

इस्लाम में औरतों के हुकूक़ नए या पुराने

सवालात व जवाबात

प्र०-1 अगर मर्द को जन्नत में हूर मिलेगी तो औरत को जन्नत में क्या मिलेगा?

उ०- मेरी बहन ने पूछा है कि जब मर्द जन्नत में दाख़िल होगा तो उसे "हूर" या एक ख़ूबसूरत औरत मिलेगी। जब एक औरत जन्नत में दाख़िल होगी तो उसे क्या मिलेगा?

क़ुरआन में हूर का शब्द चार अलग-अलग स्थानों पर इस्तेमाल हुआ है जो कि निम्नलिखित हैं:

सूर:दुख़ान आयत-54 सूर:तूर आयत-25

सूर:रहमान आयत-50 और 72 सूर:वाक़िया आयत-22

ज्यादातर तरजुमों (अनुवादों) और तफ़ासीर (व्याख्या) ख़ास तौर पर उर्दू अनुवाद में शब्द हूर के अर्थ ख़ूबसूरत औरत ही बताए गए हैं अगर इस शब्द का अर्थ वाक़ई एक ख़ूबसूरत औरत ही हैं तो फिर यह सवाल पैदा होता है कि औरत को जन्नत में किया अता होगा?

लेकिन असल मुआमला यह है कि इस शब्द के माने सिर्फ़ ख़ूबसूरत औरत नहीं हैं। यह शब्द हूर अस्ल में जमा (बहुवचन) है जिसका वाहिद (एक वचन) आह्वरा भी है और हूर भी। इन में से एक शब्द मुज़क्कर (पुर्लिंग) है और एक मौन्नस (स्त्रीलिंग) जबकि जमा दोनों की हूर ही है।

शब्द का लग्वी अर्थ है "बड़ी ख़ूबसूरत आंखे"। इसी मक़सद के लिए क़ुरआन में अलग-अलग जगहों पर अज़दवाज (बीवियां) का शब्द भी इस्तेमाल हुआ है। मिसाल के तौर पर।

सूर:बक़रह, आयत-25 सूर:निसा, आयत-57

अज़दवाज का शब्द ज़ोज (बीवी) की जमा (बहुवचन) है ज़ोज का मतलब है साथी, शरीक ज़िन्दगी मर्द के लिए औरत ज़ोज है और औरत के लिए मर्द ज़ोज है। क़ुरआन मजीद का अंग्रेज़ी अनुवाद करने वालों ने ज़्यादातर इस शब्द का तरजुमा (अनुवाद) सही किया है।

मिसाल के तौर पर मुहम्मद असद हूर का तरजुमा Spouse करते हैं। अब्दुल्लाह युसुफ़ अली रह० ने शब्द हूर का तरजुमा Companion किया है। यह दोनो शब्द ऐसे हैं जिन की कोई जिंस (लिंग) मख़्सूस नहीं है। यह शब्द मर्द के लिए भी इस्तेमाल हो सकता है और औरत के लिए भी।

इसका मतलब यह हुआ कि मर्द को जन्नत में एक बड़ी-बड़ी आंखो वाली ख़ूबसूरत शरीके ज़िन्दगी मिलेगी और औरत को भी बड़ी-बड़ी ख़ूबसूरत आंखो वाला साथी मिलेगा।

प्र०-2 मैं यह पूछना चाहूंगा कि औरत की गवाही मर्द से आधी क्यों है यानी दो औरतों की गवाही एक मर्द के बराबर क्यों क़रार दी जाती है?

उ०- मेरे भाई ने एक बहुत ख़ास सवाल पूछा है कि दो औरतों की गवाही इस्लाम में एक मर्द की गवाही के बराबर क्यों है?

पहली बात तो यह है कि हर जगह और हर मुआमले में दो औरतों की गवाही एक मर्द के बराबर नहीं क़रार दी जाती। ऐसा सिर्फ़ चंद मख़्सूस सूरतों में ही होता है। क़ुरआन मजीद में कम से कम पांच जगहें ऐसी हैं जहां गवाही का ज़िक्र मौजूद है बग़ैर किसी क़िस्म की जिंसी फ़र्क़ के।

कई जगहें ऐसी है। जहां दो औरतों की गवाही एक मर्द के बराबर क़रार दी गई है। सूर:बक़रह की आयत नम्बर 282 में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

وَاسْتَشْهِدُوْا شَهِيْدَيْنِ مِنْ رِّجَالِكُمْ فَاِنْ لَّمْ يَكُوْنَا رَجُلَيْنِ فَرَجُلٌ وَّامْرَاَتٰنِ مِمَّنْ
تَرْضَوْنَ مِنَ الشُّهَدَاۤءِ اَنْ تَضِلَّ اِحْدٰهُمَا فَتُذَكِّرَ اِحْدٰهُمَا الْاُخْرٰى. (٢٨٢:٢)

"और अपने में से दो मर्दों को (ऐसे मुआमले में) गवाह कर लिया करो और अगर दो मर्द न हो तो एक मर्द और दो औरतें जिन को तुम गवाह पसंद करो (काफ़ी हैं) कि अगर इन में से

एक भूल जाएगी तो दूसरी उसे याद दिला देगी।"

सूर:बक़रह की इस आयत में ज़िक्र सिर्फ़ माली मुआमलात का हो रहा है। सिर्फ़ माली और मआशी (आर्थिक) हालत के मुआमले में एक मर्द की गवाही दो औरतों के बराबर दी जा रही है। बल्कि कहा यह जा रहा है कि माली मुआमलात में दो मर्दों की गवाही बेहतर है और अगर दो मर्द गवाही देने वाले न हों तो फिर एक मर्द और दो औरतें गवाह बनें।

इस मुआमले को समझने के लिए मैं एक मिसाल पेश करता हूं। फ़र्ज़ करें आप कोई सर्जरी करवाना चाहते हैं या कोई आपरेशन करवाना चाहते हैं। अब ज़ाहिर है आप की ख़्वाहिश होगी कि सर्जरी से पहले कम से कम दो माहिर डॉक्टरो के साथ मश्वरा करें अब फ़र्ज कीजिए कि आप को सिर्फ़ एक माहिर सरजन मिला है। इस सूरत मे आप एक सर्जन की राय के साथ दो आम एम.बी.बी.एस डॉक्टरों की राय भी जानना चाहेंगे। इसकी वजह यही होगी कि आपरेशन के बारे में एक आम एम.बी.बी.एस डॉक्टर के मुक़ाबले में एक सर्जन का इल्म ज़्यादा होता है।

ऐसा ही मुआमला गवाही का है। चूंकि इस्लाम ने रोज़ी कमाने का ज़िम्मेदार मर्द को बनाया है लिहाज़ा ज़ाहिर है कि एक इस्लामी समाज में मआशी मुआमलात के बारे में मर्द को इल्म ज़्यादा होगा और यही वजह है कि मआशी मुआमलात में दो मर्दो की गवाही को तरजीह (प्राथमिकता) दी गई है और अगर आप सूर:मायदा की पढ़ तो वहां अल्लाह तआला फ़रमाता है:

يَـٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا شَهَادَةُ بَيْنِكُمْ اِذَا حَضَرَ اَحَدَكُمُ الْمَوْتُ
حِيْنَ الْوَصِيَّةِ اثْنٰنِ ذَوَا عَدْلٍ مِّنْكُمْ اَوْ اٰخَرٰنِ مِنْ غَيْرِكُمْ اِنْ
اَنْتُمْ ضَرَبْتُمْ فِى الْاَرْضِ فَاَصَابَتْكُمْ مُّصِيْبَةُ الْمَوْتِ ط.(١٠٦:٥)

"मोमिनो! जब तुम में से किसी की मौत आ जाए तो शहादत

(गवाही) का तरीक़ा यह है कि वसीयत के वक़्त तुम मुसलमानों मे से दो मर्द आदिल (ऐतबार के क़ाबिल) गवाह हों या अगर (मुसलमान गवाह न मिले और) तुम सफ़र कर रहे हो और (उस वक़्त) तुम पर मौत की मुसीबत आ जाए तो किसी दूसरे मज़हब के दो (लोगों को) गवाह कर लो।"

यहां भी चूंकि मुआमला मआशी (आर्थिक) हालत का है लिहाज़ा मर्द की गवाही को तरजीह दी गई है। कुछ क़ानून के विद्धवानों की राय यह है कि "क़त्ल" के मुआमले में भी जुर्म की मख़्सूस हालत को देखते हुए और औरत के फ़ितरत के तक़ाज़ो को देखते हुए यही उसूल लागू होना चाहिए। यानी दो औरतों की गवाही एक मर्द की गवाही के बराबर क़रार दी जानी चाहिए।

सिर्फ़ दो मुआमलात ऐसे हैं जहां दो औरतों की गवाही एक मर्द के बराबर होगी लेकिन अगर क़ुरआनी हिदायात को सामने रखा जाए तो यह बात सही साबित नहीं होती।

आईए देखते हैं क़ुरआन हमें इस बारे में क्या आदेश देता है। सूर:नूर में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

وَالَّـذِيْنَ يَرْمُوْنَ اَزْوَاجَهُمْ وَلَمْ يَكُنْ لَّهُمْ شُهَدَاءُ اِلَّآ اَنْفُسُهُمْ فَشَهَادَةُ اَحَدِهِمْ اَرْبَعُ شَهَادَاتٍ بِـاللّٰهِ اِنَّهُ لَـمِنَ الصَّادِقِيْنَ. وَالْخَامِسَةُ اَنَّ لَعْنَةَ اللّٰهِ عَلَيْهِ اِنْ كَانَ مِنَ الْكَـاذِبِيْـنَ. وَالْـخَـامِسَةَ اَنَّ غَضَبَ اللّٰهِ عَلَيْهَا اِنْ كَانَ مِنَ الصَّادِقِيْنَ. (٢٤:٦-٩)

"और जो लोग अपनी औरतों पर बदकारी के इल्ज़ाम लगाएं और ख़ुद उनके सिवा उनके गवाह न हों तो हर एक की शहादत यह है कि पहले तो चार बार अल्लाह की क़सम खाए कि बेशक सच्चा है और पांचवी (बार) यह (कहे) अगर वह झूटा हो तो उस पर अल्लाह की लानत। और औरत की सज़ा को यह बात टाल सकती है कि वह पहले चार बार अल्लाह की क़सम खाए कि बेशक यह झूटा है और पांचवी (बार) यूं (कहे) कि अगर यह सच्चा है तो मुझ पर अल्लाह का ग़ज़ब (नाज़िल हो)।"

उपर बताई गई आयात से यह बात साफ़ तौर पर सामने आती है कि बीवी शौहर पर इल्ज़ाम लगाए या शौहर बीवी पर। दोनो की ज़ाती गवाही इस मुआमले में बराबर है।

इसी तरह रूयत हिलाल (पहले दिन के चांद का नज़र आना) के मुआमले में भी औरत और मर्द की गवाही में कोई फ़र्क़ नहीं किया जाता। कुछ फ़िक़्ह (आलिमों) का कहना है कि रमज़ान के चांद की रूयत (नज़ारा) के लिए एक और शव्वाल के चांद के लिए दो गवाह ज़रूरी होंगे लेकिन गवाह के मर्द या औरत होने से वहां भी फ़र्क़ कोई नहीं पड़ता।

कुछ मुआमलात में सिर्फ़ औरत ही गवाही दे सकती है। मिसाल के तौर पर अगर मुआमला मय्यत के ग़ुसल का हो, क्योंकि जब तक कोई औरत उपलब्ध हो औरत को ग़ुसल मय्यत औरत ही देगी। यानी इस मुआमले में गवाही की ज़रूरत पड़े तो औरत को तरजीह (प्राथमिकता) दी जाती है। मैं उम्मीद करता हूं कि मुआमला आप के ज़हनो में साफ़ हो चुका होगा।

प्र०-3 मैं पूछना चाहती हूं कि इस्लाम में कसरत अज़दवाज (एक से अधिक बीवीयों) की इजाज़त क्यों दी गई है? यानी मर्द को एक से अधिक शादियों की इजाज़त क्यों है?

उ०- मेरी बहन ने पूछा है कि इस्लाम में एक से अधिक बीवी की इजाज़त क्यों दी गई है या दूसरे शब्दों में मर्द एक से ज़्यादा शादियां क्यों कर सकता है? बहन ने जो शब्द इस्तेमाल किया है वह है **Polygamy** पोली गैमी का मतलब है एक से अधिक शादियां करना। इस की दो क़िस्में हैं। एक शब्द है **Polygamy** जो औरत के एक से अधिक शौहर रखने के लिए इस्तेमाल होता है। गोया दो तरह की कसरत अज़दवाज़ मुम्किन है जिन में एक के बारे में बहन ने सवाल पूछा है। यानी यह कि मर्द एक से अधिक शादियां क्यों कर सकता है।

मैं सब से पहले तो यह कहना चाहूंगा कि कुरआन दुनिया की वाहिद इल्हामी (अल्लाह की तरफ़ से) किताब है जो एक ही शादी की इजाज़त देती है और कोई ऐसी किताब मौजूद नहीं है जो एक शादी का हुक्म देती है।

आप पूरी "गीता" पढ़ जाए, पूरी "रामायण" पढ़ लें, पूरी महाभारत पढ़ ले। कहीं आप को यह लिखा नहीं मिलेगा कि एक शादी करो यहां तक कि बाइबल में भी आप एक शादी का हुक्म तलाश नहीं कर सकेंगे।

बल्कि अगर आप हिन्दुओं के ग्रंथों को पढ़े तो आप को मालूम होगा कि अधिकतर राजों, महाराजों की एक से ज़्यादा बीवियां थीं। "दशरथ" की एक से अधिक बीवियां थीं, कृष्णा की बहुत सी बीवियां थीं।

अगर आप यहूदी क़ानून का अध्ययन करें तो आप को मालूम होगा कि यहूदियत में 11वीं सदी ई० तक मर्द को एक से ज़्यादा बीवियां रखने की इजाज़त हासिल रही है। यहां तक रबी गिरशिम बिन यहूदाह ने इस पर पाबंदी लगा दी। इस के बावजूद अरब इलाकों में आबाद यहूदी 1950ई० तक एक से ज़्यादा शादियां करते रहे लेकिन 1950ई० में इस्राईल के उलमा ने एक से ज़्यादा बीवियां रखने पर मुकम्मल पाबंदी लगा दी।

इसी तरह ईसाई इंजील भी एक से ज़्यादा बीवियां रखने की इजाज़त देती है। यह तो चंद सदियां पहले ईसाई उलमा ने एक से ज़्यादा शादियों पर पाबंदी लगाई है।

अगर आप हिन्दुस्तानी क़ानून का जायज़ा लें तो आप को मालूम होगा कि पहली बार 1954 में एक से ज़्यादा बीवियों पर पाबंदी लगाई गई इस से पहले हिन्दुस्तान में क़ानूनी तौर पर भी मर्द को एक से ज़्यादा शादियां करने की इजाज़त थी।

1954ई० में हिन्दु मैरिज एक्ट लागू हुआ जिस में हिन्दुओं को एक से ज़्यादा बीवियां रखने पर पाबंदी लगा दी गई।

अगर आप आंकड़ों का तजज़िया करें तो सूरतेहाल आप के सामने साफ़ हो जाएगी। ये आंकड़े "इस्लाम में औरत का मुक़ाम" के विषय से तहक़ीक़ करने वाली कमेटी की रिपोर्ट में शामिल हैं। 1975ई० में प्रकाशित होने वाली रिपोर्ट के पृष्ठ 66 और पृष्ठ 67 पर एक से ज़्यादा शादियों के हवाले से आंकड़े दिये गये हैं जिन में बताया गया है कि हिन्दुओं में एक से ज़्यादा शादियों की दर 5.56 फ़ीसद थी जबकि मुसलमानों में यह दर 4.31 फ़ीसद थी।

लेकिन छोड़िये आंकड़ों को हम असल विषय की तरफ़ आते हैं कि आख़िर इस्लाम में मर्द को एक से ज़्यादा शादियों की इजाज़त क्यों दी गई है? जैसा कि हम ने पहले कहा था इस समय कुरआन ही दुनिया में वह अकेली मज़हबी किताब है जो एक शादी का हुक्म देती है।

सूर:निसा में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

وَاِنْ خِفْتُمْ اَلَّا تُقْسِطُوْا فِی الْیَتٰمٰی فَانْکِحُوا مَاطَابَ لَکُمْ
مِنَ النِّسَاءِ مَثْنٰی وَثُلٰثَ وَرُبٰعَ فَاِنْ خِفْتُمْ اَلَّا تَعْدِلُوْا فَوَاحِدَةً
اَوْ مَا مَلَکَتْ اَیْمَانُکُمْ ذٰلِکَ اَدْنٰی اَلَّا تَعُوْلُوْا. (۴:۳)

"और अगर तुम को इस बात का ख़ोफ़ हो कि यतीमों के बारे में इंसाफ़ न कर सकोगे तो जो औरतें तुम को पसंद हों दो-दो, या तीन-तीन, या चार-चार इन से निकाह कर लो अगर इस बात का डर हो कि (सब औरतों से) एक जैसा सुलूक न कर सकोगे तो एक औरत (ही काफ़ी है) या लोंडी जिस के तुम मालिक हो। इस से तुम बेइंसाफ़ी से बच जाओगे।"

यह हुक्म कि फिर एक ही शादी करो, कुरआन के अलावा किसी ग्रंथ में नहीं दिया गया। अरबों में इस्लाम से पहले मर्द बहुत

सी शादियां किया करते थे। कुछ मर्दों की तो सैंकड़ों बीवियां थीं।

इस्लाम ने एक तो बीवियों की हद मुक़र्रर कर दी और ज़्यादा से ज़्यादा तादाद चार कर दी और एक से ज़्यादा शादियों की सूरत में एक बहुत सख़्त शर्त भी लगा दी वह यह कि अगर आप एक से ज़्यादा शादियां करते हैं तो फिर आप को अपनी दोनो, तीनों या चारों बीवियों के बीच पूरा इंसाफ़ करना होगा दूसरी सूरत में एक ही शादी की इजाज़त है।

अल्लाह तआला सूर:निसा में फ़रमाता है:

وَلَنْ تَسْتَطِيْعُوْا اَنْ تَعْدِلُوْا بَيْنَ النِّسَاءِ وَلَوْ حَرَصْتُمْ
فَلَا تَمِيْلُوْا كُلَّ الْمَيْلِ فَتَذَرُوْهَا كَالْمُعَلَّقَةِ وَاِنْ
تُصْلِحُوْا وَتَتَّقُوْا فَاِنَّ اللّٰهَ كَانَ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا. (۱۲۹:۴)

"और तुम चाहे कितना ही चाहो औरतों में हरगिज़ बराबरी नहीं कर सकोगे तो ऐसा भी न करना कि एक ही की तरफ़ ढल जाओ और दूसरी को (ऐसी हालत में) छोड़ दो कि मानो वह लटक रही है और अगर आपस में बराबरी कर लो और परहेज़गारी करो तो अल्लाह बख़्शने वाला मेहरबान है।"

गोया एक से ज़्यादा शादियां कोई उसूल नहीं है बल्कि एक अलग सूरतेहाल है। बहुत से लोग समझते हैं कि इस्लाम एक से ज़्यादा शादियों का हुक्म देता है।

लेकिन सूरतेहाल यह है कि इस्लाम में आमाल के पांच दर्जे या क़िस्में हैं:

पहला दर्जा "फ़र्ज़" है। यानी वह काम जिन का करना ज़रूरी और लाज़मी है।

दूसरा दर्जा मुस्तहब कामों का है उन कामों का जिन्हें फ़र्ज़ तो नहीं किया गया लेकिन उन के करने की ताकीद (चेतावनी) या होसला अफ़्ज़ाई की गई है।

तीसरे दर्जे में वह काम आ जाते हैं जिनकी न होसला अफ़्ज़ाई की गई और न रोका गया। चौथे दर्जे में मकरूह काम आते हैं और पांचवा दर्जा हराम कामों का है यानी जिनसे मुकम्मल मना कर दिया गया है।

एक से ज़्यादा शादियों का मुआमला तीसरे या बीच वाले दर्जे में आता है। यानी वह काम जिन के करने की न तो क़ुरआन व सुन्नत में ताकीद की गई है और न ही मना किया गया है। पूरे क़ुरआन में और इसी तरह हदीसों (ग्रंथ) में भी हमें कोई ऐसा बयान नहीं मिलता जिस में कहा गया हो कि जो मुसलमान एक से ज़्यादा शादियां करता है वह उस मुसलमान से बेहतर है जो एक ही शादी करता है।

आईए तजज़िया करते हैं कि इस्लाम मर्द को एक से ज़्यादा शादियों की इजाज़त क्यों देता है।

क़ुदरती तौर पर मर्द और औरतें तक़रीबन बराबर तादाद में पैदा होते हैं लेकिन आज के दौर में इलाज करने का तरीक़ा हमें बताता है कि लड़कियों में बर्दाश्त करने की शक्ति लड़कों के मुक़ाबले ज़्यादा होती है। एक लड़की किटाणु और बीमारियों का मुक़ाबला बेहतर तरीक़े से कर सकती है मुक़ाबले एक लड़के के। सेहत के लिहाज़ से औरत मर्द के मुक़ाबले में बेहतर है। लिहाज़ा होता यह है कि नवजात शिशु की सतह पर ही लड़कियों की संख्या लड़कों से कुछ ज़्यादा हो जाती है।

दुनिया में जंगें होती रहती हैं और हम सब जानते हैं कि दौराने जंग मर्दों की मौतें औरतों के मुक़ाबले में कई गुनाह ज़्यादा होती हैं। हाल ही में हमने देखा कि अफ़ग़ानिस्तान में एक लम्बी जंग हुई। इस जंग के दौरान तक़रीबन 15 लाख लोग मारे गए इन मरने वालों में मर्दों की तादाद ज़्यादा थी।

इस तरह अगर आप हादसों के आंकड़ों का तजज़िया करें तो आप को मालूम होगा कि हादसात में हलाक होने वालो की तादाद भी मर्दों की ज़्यादा थी। यहां तक कि मंशियात (नशीली दवाएं) के

इस्तेमाल से होने वाली मौतों में भी मर्दों की तादाद ही ज़्यादा होती है।

ऊपर बताई गई तमाम बातों के नतीजे में दुनिया में मर्दों की आबादी औरतों के मुक़ाबले में कम है। ऐशिया और अफ़रीक़ा के चंद देशों के अलावा पूरी दुनिया में ही औरतों की आबादी मर्दों से ज़्यादा है जिन देशों में औरतों की आबादी कम है इन में से एक देश हिन्दुस्तान है। और हिन्दुस्तान में औरतों की आबादी मर्दों के मुक़ाबले में कम होने की बुनियादी वजह हम आप को पहले ही बता चुके हैं। यहां हर साल दस लाख से ज़्यादा गर्भ-पात किये जाते है और यह मालूम होते ही कि पैदा होने वाली लड़की होगी गर्भ-पात करवा दिया जाता है। और इस तरह लड़कियों को क़त्ल किये जाने की वजह से ही मर्दों की आबादी ज़्यादा है। अगर आज यह काम बन्द हो जाए तो चंद ही सदियों में आप देखेंगे कि हिन्दुस्तान में भी औरतों की तादाद मर्दों से बढ़ जाएगी जैसा कि बाक़ी सारी दुनिया में है।

इस वक़्त सिर्फ़ अमरीका के शहर न्यूयॉर्क में औरतों की तादाद मर्दों से एक लाख ज़्यादा है। पूरे अमरीका में सूरतेहाल यह है कि मर्दों के मुक़ाबले में 78 लाख औरतें ज़्यादा हैं। इस के अलावा कहा जाता है कि न्यूयॉर्क में एक तिहाई हम-जिंसपरस्त (सम-लेंगिक) हैं पूरे अमरीका में हम-जिंस परस्त मर्दों की तादाद ढाई करोड़ से ज़्यादा है।

बरतानिया का मुआमला भी अलग नहीं। वहां भी मर्दों के मुक़ाबले में चालीस लाख औरतें ज़्यादा हैं। जरमनी में यह फ़र्क़ इस से भी ज़्यादा है। वहां मर्दों के मुक़ाबले में 50 लाख औरतें ज़्यादा मौजूद हैं। रूस में औरतों की तादाद मर्दों के मुक़ाबले में 70 लाख ज़्यादा है।

इसी तरह अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि पूरी दुनिया में मर्दों की संख्या औरतों के मुक़ाबले में कितनी कम है। मान लीजिए मेरी बहन अमरीका में रहती है और तादाद के इस फ़र्क़ की वजह से वह

उन औरतों में शामिल है जिन्हें शादी के लिए शोहर नहीं मिल सकता। क्योंकि तमाम मर्द एक-एक शादी कर चुके हैं। इस सूरतेहाल में इस के पास दो ही रास्ते बाक़ी बचते हैं।

पहली सूरत तो यह है कि वह किसी शादीशुदा मर्द से शादी कर ले और दूसरी यह कि वह अवामी मिल्कियत बनने के रास्ते पर चल पड़े। हक़ीक़त यह है कि कोई तीसरी सूरत नहीं है। और यही दोनो रास्ते बाक़ी बचते हैं। मैं ने बेशुमार लोगों से यह सवाल पूछा है तो सब ने एक ही जवाब दिया कि ऐसी सूरतेहाल में वह पहली ही सूरत को प्राथमिकता देंगे। आज तक किसी ने दूसरी सूरत को पसंद नहीं किया। अलबत्ता कुछ ज़हीन लोगों ने यह जवाब दिया कि वे पंसद करेंगे कि उनकी बहन सारी उम्र कुंवारी ही रहे।

लेकिन तिब का ज्ञान हमें बताता है कि ऐसा होना मुम्किन नहीं। मर्द या औरत किसी के लिए भी सारी उम्र कुंवारा रहना बहुत मुश्किल है और अगर ऐसा किया जाएगा तो इसका नतीजा बद-किरदारी ही की सूरत में हासिल होगा क्योंकि और सूरत है ही नहीं।

वह "महान" जोगी और संत जो दुनिया से दूर हो जाते हैं और शहरों को छोड़ कर जंगलों की तरफ़ निकल जाते हैं उनके साथ देवदासियां भी नज़र आती हैं, क्यों? ऐसा क्यों होता है?

एक रिपोर्ट के मुताबिक़ चर्च ऑफ़ इंगलेण्ड से जुड़े पादरियों और ननों की अकसरियत (बहुमत), जी हां ज़्यादा संख्या बद-किरदारी और हम-जिंस परस्ती वग़ैरा में लगी है। इस की वजह यही है कि कोई तीसरा रास्ता मौजूद ही नहीं या तो शादीशुदा मर्द से शादी है और या जिंसी बे राह रवी (ग़लत रास्ते पर चलना) है।

प्र०-4 एक से ज़्यादा शादियां करने के लिए क्या शर्ते और कारण हैं?

उ०- सवाल यह पूछा गया है कि एक से ज़्यादा शादियां करने के लिए क्या-क्या शर्तें हैं। एक ही शर्त लगाई गई है और वह यह कि

शोहर अपनी दोनों, या तीनो या चारों बीवीयों में पूरा इंसाफ़ कर सकता है। या नहीं? अगर वह इंसाफ़ कर सकता है तो उसे ज़्यादा शादियों की इजाज़त है। दूसरी सूरत में उसे एक ही बीवी पर सब्र करना होगा।

कई ऐसी सूरतें हैं जिन में मर्द के लिए एक से ज़्यादा शादियां करना बेहतर होता है पहली सूरत तो वही है जिसका ज़िक्र पिछले सवाल के जवाब में किया गया है। चूंकि औरतों की तादाद मर्दो के मुकाबले में ज़्यादा है इस लिए औरतों की इज़्ज़त की हिफ़ाज़त के हवाले से एक से ज़्यादा शादियां करना ज़रूरी है।

इस के अलावा भी कई सूरतें हैं। मिसाल के तौर पर मान लीजिए एक नौजवान औरत की शादी होती है और शादी के कुछ ही समय बाद वह किसी हादसे का शिकार होकर माज़ूर (अपाहिज) हो जाती है और उसके लिए बीवी की ज़िम्मेदारियां अदा करना मुम्किन नहीं रहता। अब इस सूरतेहाल में शौहर के पास दो रास्ते हैं या तो वह अपनी इस माज़ूर (अपाहिज) बीवी को छोड़ कर दूसरी शादी कर ले और या इस बीवी को भी रखे और दूसरी शादी भी कर ले।

मैं आप से पूछता हूं? मान लीजिए कि यह बद किस्मत औरत जो हादसे का शिकार हुई है आप की बहन है। आप इन दोनो सूरतों में कौन सी सूरत पसंद करेंगे? यह कि आप के बहनोई दूसरी शादी कर लें या यह कि आप की बहन को तलाक़ दे कर फिर दूसरी शादी करे?

इसी तरह अगर बीमारी या किसी और वजह से बीवी अपनी ज़िम्मेदारियां अंजाम नहीं दे पाती तो इस सूरत में भी बेहतर यही है कि शौहर दूसरी शादी कर ले। और यूं यह दूसरी बीवी न सिर्फ़ अपने शोहर की बल्कि पहली बीवी की भी देख भाल करे और अगर पहली बीवी के बच्चे मौजूद है तो उन बच्चों की भी परवरिश करे।

बहुत से लोग यहां यह कहेंगे कि यह भी तो हो सकता है कि

शोहर इस मक़सद के लिए, यानी बच्चों की देख-भाल के लिए कोई नौकरानी या आया आदि भी तो रखी जा सकती है। बात ठीक है। मैं इस बात से सहमती रखता हूं कि बच्चों और माज़ूर (अपाहिज) बीवी का खयाल रखने के लिए तो नौकरानी रखी जा सकती है लेकिन खुद शोहर का खयाल कौन रखेगा?

नतीजा यही होगा कि बहुत जल्द नौकरानी उसका भी "ख़याल रखना" शुरू कर देगी बेहतरीन सूरत यही है कि पहली बीवी को भी रखा जाए और दूसरी शादी भी कर ली जाए।

इसी तरह बेऔलादी भी एक ऐसी सूरत है जिस में दूसरी शादी की सलाह दी जा सकती है। लम्बे समय तक औलाद न होने की सूरत में जबकि शौहर और बीवी दोनो औलाद की बहुत ख़्वाहिश भी रखते हों बीवी खुद शौहर को दूसरी शादी की सलाह दे सकती है।

यहां कुछ लोग कहेंगे कि वह किसी बच्चे को गोद भी तो ले सकते हैं लेकिन इस्लाम इस काम की इजाज़त नहीं देता जिसके कई कारण हैं। इन कारणों की तफ़सील में, मैं यहां नहीं जाऊंगा लेकिन इस सूरत में भी शौहर के पास दो ही रास्ते बाक़ी बचते हैं यानी या तो वह पहली बीवी को तलाक़ दे कर दूसरी शादी करे और या पहली शादी को बरक़रार रखते हुए दूसरी शादी करे, और दोनों के साथ पूरा इंसाफ़ करे।

मेरे ख़याल में यह काफ़ी वजूहात हैं।

प्र०-5 क्या औरत मुल्क की हाकिम (प्रबन्धकर्ता) बन सकती है?

उ०- मेरे भाई ने सवाल पूछा है कि क्या औरत हाकिम बन सकती है? मेरी जानकारी की हद तक क़ुरआन में कोई ऐसी आयत मौजूद नहीं, कोई ऐसा हुक्म मौजूद नहीं कि औरत मुल्क की प्रबन्धकर्ता नहीं बन सकती।"

लेकिन कई हदीसे (पवित्र ग्रंथ) ऐसी मौजूद हैं मिसाल के तौर

पर एक हदीस जिसका अर्थ है:

"वह क़ौम कभी कामयाब नहीं हो सकती जिस ने अपना हाकिम औरत को बना लिया।"

कुछ उलमा का कहना है कि इन हदीसों का सबंध उसी ज़माने से है। यानी उन का हुक्म उसी ज़माने के लिए सीमित है जिस ज़माने में फ़ारस में औरत हुकमरान (बादशाह) थी। जब कि दूसरे उलमा की राय अलग है। वह इस हुक्म को हर ज़माने के लिये आम समझते हैं।

आइए हम तजज़िया करके देखते हैं कि एक औरत के लिए हाकिम बनना अच्छा है या नहीं? अगर एक इस्लामी रियासत में औरत हाकिम होगी तो उसे नमाज़ों की इमामत भी करवानी होगी और अगर एक औरत जमात के साथ नमाज़ की इमामत करवाती है तो लाज़मी है कि नमाज़ियों की तवज्जह भटकेगी। क्योंकि नमाज़ के कई अरकान है। जैसे क़याम (खड़े होना), रुकू, सिजदा आदि जब एक औरत, मर्द नमाज़ियों की इमामत करवाएगी और यह अरकान अदा करेगी तो मुझे यक़ीन है कि नमाज़ियों के लिये परेशानी होगी।

अगर औरत एक नए समाज में हाकिम होगी, जैसा कि हमारा आज कल का समाज है तो अकसर उसे दूसरे लोगों से मुलाक़ात करनी होगी जो कि अधिकतर मर्द होते हैं। यह मुलाक़ातें बन्द कमरे में भी होती हैं जिस में दोनों हाकिम तनहाई में मुलाक़ात करते हैं इसके दौरान वहां कोई और मौजूद नहीं होता। इस्लाम ऐसी मुलाक़ात की इजाज़त नहीं देता इस्लाम किसी औरत को तनहाई में किसी नामेहरम (ग़ैर-मर्द) से मुलाक़ात की इजाज़त नहीं देता।

इस्लाम ग़ैर-मर्द और ग़ैर-औरत के मेल-जोल को नाजायज़ क़रार देता है। मुल्क की प्रधानमंत्री होने की हैसियत से औरत को सबके सामने रहना होता है। इस की तसवीरें बनाई जाती हैं। इसकी वीडियो फ़िल्में बनती हैं। इन तसवीरों में वह नामेहरम (ग़ैर-मर्दों) के साथ

होती है। कोई भी औरत मिसाल के तौर पर मारग्रेट थैचर अगर प्रधान मंत्री हो तो आप को इस की बेशुमार तसवीरें मिल सकती हैं जिन में वह मर्दों से हाथ मिला रही होगी। इस्लाम इस तरह की आज़ादी की इजाज़त नहीं देता।

मुल्क की प्रधानमंत्री होने की हैसियत से एक औरत के लिये अवाम के करीब रहना और उनसे मिल कर उनके मसाइल मालूम करना भी मुश्किल होगा।

जदीद साइंस हमें बताती है कि अय्यामे हैज़ (मासिक धर्म) के दौरान औरत में कई मानसिक, ज़ेहनी और व्यवहारिक तबदीलियां होती हैं। जिस की वजह जिंसी हारमोन ऐस्टोजिन होते हैं। अब अगर यह औरत हाकिम है तो यह तबदीली यक़ीनन उसकी फ़ैसला करने की ताक़त पर प्रभावित होगी। साइंस हमें यह भी बताती है कि औरत में बोलने की, बातचीत की सलाहियत मर्द के मुक़ाबले में ज़्यादा होती है। जबकि मर्द में एक ख़ास सलाहियत **Spacialagility** ज़्यादा होती है। इस सलाहियत से मुराद होती है भविष्य की मंसूबा बंदी करने, भविष्य को देखने और समझने की सलाहियत। यह सलाहियत एक प्रबंधकर्ता के लिए बेहद ज़रूरी है। औरतों को बातचीत की सलाहियत मर्दों के मुक़ाबले में ज़्यादा दी गई है क्योंकि यह सलाहियत बहैसियत मां के इस के लिये ज़रूरी है।

एक औरत हामला (गर्भवती) भी हो सकती है और ज़ाहिर है कि इस सूरत में उसे कुछ महीनों के लिये आराम करना होगा, इस दौरान उसके काम कौन अदा करेगा। उसके बच्चे होंगे और मां के काम बहुत एहम हैं। एक मर्द के लिये हाकिम की ज़िम्मेदारियां और एक बाप की ज़िम्मेदारियां एक साथ अदा करना ज़्यादा क़ाबिले अमल है। जब कि एक औरत के लिये हाकिम और मां की ज़िम्मेदारियां एक साथ अदा करना बहुत मुश्किल है।

इन वजूहात के कारण मेरी राय उन उलमा-ए-किराम के ज़्यादा क़रीब है जो कहते हैं कि औरत को हुकूमत का प्रबंधकर्ता नहीं बनाया जाना चाहिए।

लेकिन इसका मतलब यह हरगिज़ नहीं कि औरत फैसलों में हिस्सा नहीं ले सकती या क़ानून साज़ी के काम में शामिल नहीं हो सकती। जैसा कि मैं ने पहले कहा यक़ीनन क़ानून साज़ी के अमल में हिस्सा ले सकती है। उसे वोट देने का हक़ हासिल है। सुलह हुदैबिया के दौरान हज़रत उम सलमा (र.त.अन्हा) हुज़ूर नबी करीम (स.अ.व.) को सलाह देती रहीं। एक ऐसे वक़्त में जब तमाम मुसलमान परेशान थे उन्होंने रसूल अल्लाह स.अ.व. को तसल्ली भी दी और उन्हें मश्वरे भी दिये।

आप जानते हैं कि हाकिम तो सदर (राष्ट्रपति) या वज़ीर आज़म (प्रधान मंत्री) होते हैं लेकिन कभी-कभी सैक्रेट्री या **PA** को बहुत से फैसले करने होते हैं। लिहाज़ा यक़ीनन एक औरत मर्द की मदद ज़रूर कर सकती है और ख़ास फैसले करने में उसे फ़ायदेमंद मश्वरे और रहनुमाई कर सकती है।

प्र०-6 अगर इस्लामी तालीमात यह हैं कि मर्द और औरत के हुक़ूक़ बराबर हैं तो फिर औरत को परदे का हुक्म क्यों दिया गया है?

उ०- मेरी बहन ने एक बहुत अच्छा सवाल पूछा है कि अगर इस्लाम औरतों के हुक़ूक़ में यक़ीन रखता है, अगर इस्लाम मर्द और औरत को बराबर समझता है तो फिर इस्लाम परदे का हुक्म क्यों देता है? और दोनो जिंसो यानी मर्द और औरत को अलग रखने की ताकीद क्यों करता है।

मैं परदे के हुक्म के बारे में बातचीत थोड़ी देर बाद करूंगा, मैं अपनी बहन का शुक्रिया अदा करना चाहता हूं जिस ने यह सवाल पूछा है क्योंकि मैं परदे या हिजाब के बारे में बातचीत नहीं कर पाया था।

अगर आप क़ुरआन का मुताला (अध्ययंन) करें तो आप देखेंगे

कि औरत को हिजाब का हुक्म देने से पहले क़ुरआन मर्द को हिजाब का हुक्म देता है।

सूर:नूर में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

قُلْ لِلْمُؤْمِنِيْنَ يَغُضُّوْا مِنْ اَبْصَارِهِمْ وَيَحفَظُوْا فُرُوْجَهُمْ
ذٰلِكَ اَزْكَى لَهُمْ اِنَّ اللّٰـهَ خَبِيْرٌ يَصْنَعُوْنَ. (۳۰:۲۴)

"मौमिन मर्दों से कह दो कि अपनी नज़रें नीची रखा करें और अपनी शर्मगाहों की हिफ़ाज़त किया करें। यह उनके लिए बड़ी पाकीज़गी की बात है (और) जो काम यह करते हैं अल्लाह उन से ख़बरदार है।"

और उसके बाद अगली ही आयत में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

وَقُلْ لِلْمُؤْمِنَاتِ يَغْضُضْنَ مِنْ اَبْصَارِهِنَّ وَيَحفَظْنَ فُرُوْجَهُنَّ وَلَا يُبْدِيْنَ
زِيْنَتَهُنَّ اِلَّا مَا ظَهَرَ مِنْهَا وَلْيَضْرِبْنَ بِخُمُرِهِنَّ عَلٰى جُيُوْبِهِنَّ. (۳۱:۲۴)

"और मौमिन औरतों से भी कह दो कि वह भी अपनी निगाहें नीचीं रखा करें और अपनी शर्मगाहों की हिफ़ाज़त किया करें और अपनी आराइश (यानी ज़ेवर के मुक़ामात) को ज़ाहिर न होने दिया करें मगर जो उस में से खुला रहता हो और अपने सीनों पर ओढ़निया ओढ़े रहा करें।"

इस के बाद रिश्तेदारों की एक लम्बी फ़हरिस्त (सूची) दी गई है और ज़ाहिर है कि औरतें भी इस में शामिल हैं। इनके अलावा उसे तमाम लोगों से परदा करना है। यानी "हिजाब" के उसूलों पर अमल करना है। इस्लामी हिजाब के यह उसूल क़ुरआन मजीद और हदीसों में बयान किए गए हैं। यह उसूल तादाद में 6 हैं

☆ पहला उसूल हिजाब की हद या मैयार का है। जो कि मर्द और औरत के लिए अलग हैं। मर्द के लिए सत्र (नाभि से ऊपर का हिस्सा) औरत की हद नाफ़ (नाभि) से घुटने तक है जबकि औरत के लिए सारा जिस्म ही औरत के सत्र में शामिल है। जो

अंग नज़र आ सकते हैं वह सिर्फ़ चेहरा और कलाइयों तक हाथ हैं। उन के अलावा सारे जिस्म का हिजाब यानी छिपाना ज़रूरी है। अगर वह चेहरा और हाथ भी छिपाना चाहे तो उसे मना नहीं किया गया लेकिन उन अंगों का मेहरम (क़रीबी रिश्तेदार यानी बाप, भाई) के सामने छिपाना ज़रूरी नहीं है। यह वह तनहा उसूल हैं जो मर्द और औरत के लिए अलग है। बाक़ी तमाम उसूल दोनों के लिए बराबर हैं।

☆ दूसरा उसूल यह है कि औरत का लिबास तंग और चुस्त नहीं होना चाहिए। यानी इस किस्म का लिबास नहीं पहनना चाहिए जिस से जिस्म के हिस्से साफ़ तौर पर नज़र आने लगें।

☆ तीसरा उसूल यह है कि औरत का लिबास शफ़्फ़ाफ़ (पारदर्शी) नहीं होना चाहिए। यानी ऐसा लिबास नहीं पहनना चाहिए जिस में से आर-पार नज़र आए।

☆ चौथा उसूल यह है कि लिबास बहुत ज़्यादा शोख़ भड़कीला नहीं होना चाहिए यानी ऐसा लिबास भी नहीं होना चाहिए जो मर्दों को बहकाने वाला हो।

☆ पांचवा उसूल यह है कि मर्दों को औरतों जैसे और औरतों को मर्दों जैसे लिबास पहनने से परहेज़ करना चाहिए। जिस की एक मिसाल मर्दों का कानों में बालियां वग़ैरा पहनना है। अगर आप एक कान में बाली पहनते हैं तो उस से मुराद कुछ और ली जाती है लेकिन अगर दोनों कानों में पहनी जाए तो उसका मतलब कुछ और होता है। इस से इस्लाम में मना किया गया है।

☆ छटा और आख़िरी उसूल यह है कि आप को ऐसा लिबास भी नहीं पहनना चाहिए जिस की तुलना काफ़िरों से होती है।

ऊपर बताई गई बातों में इस्लामी हिजाब के बुनियादी उसूल बयान कर दिये गए हैं। अब हम असल सवाल की तरफ़ आते हैं। यानी यह

कि औरतों पर परदे की पाबंदी क्यों लगाई गई है और दूसरे यह कि दोनों जिंसों के इख़्तिलात (मैल-जोल) से क्यों रोका गया है?

इस मक़सद के लिए हम दोनों तरह के समाजों का तजज़िया करते हैं यानी वह समाज जिन में परदा किया जाता है और वह समाज जिन में परदा मौजूद नहीं है। दुनिया में इस वक़्त सब से ज़्यादा अपराध जिस मुल्क में होते हैं वह देश अमरीका है।

अमरीकी तहक़ीक़ाती इदारे "फ़ेड्रल ब्योरो ऑफ़ इनवेस्टीगेशन" की 1990 ई० में सामने आने वाली एक रिपोर्ट के मुताबिक़ इस एक साल के दौरान एक हज़ार दो सो पचास बलात्कार की घटनाएं हुईं। यह वे घटनाएं हैं जिन की रिपोर्ट हुई। और यही रिपोर्ट कहती है कि सिर्फ़ 16 फ़ीसद घटनाओं की रिपोर्ट हुई। इस हिसाब से अगर आप असल तादाद मालूम करना चाहें तो वह ख़ुद ज़रब तक़सीम (गुणा, भाग) कर लें, आप को अंदाज़ा हो जाएगा कि सिर्फ़ एक साल के समय में कितनी औरतों के साथ बलात्कार की घटनाएं हुईं, बाद में यह संख्या और बढ़ गई और यहां तक पहुंची कि रोज़ाना एक हज़ार नौ सौ घटनाएं हुईं।

शायद अमरीकी ज़्यादा बोल्ड हो गए होंगे।

1993 ई० की रिपोर्ट के मुताबिक़ हर 1.3 मिनट के बाद एक औरत के साथ बलात्कार की घटना हो रही है।

लेकिन ऐसा क्यों हो रहा है?

अमरीका ने औरतों को ज़्यादा हुक़ूक़ दिये हैं और वहां यह घटनाएं ज़्यादा हो रही हैं।

अफ़सोस की बात यह है कि सिर्फ़ दस फ़ीसद मुजरिम गिरफ़्तार होते हैं। यानी सिर्फ़ 16 फ़ीसद घटनाएं रिपोर्ट होती हैं और दस फ़ीसद गिरफ़्तारियां होती हैं। यानी कार्यवाई के तौर पर 1.6 फ़ीसद मुल्ज़िम गिरफ़्तार होते हैं उन गिरफ़्तार होने वालों में से भी आधे

बाक़ायदा कोई कैस चलने से पहले ही रिहा छोड़ दिये जाते हैं यानी .8 फ़ीसद मुजरिमों के ख़िलाफ़ बाक़ायदा कैस चलता है।

इस सारे तजज़िये का नतीजा यह निकलता है कि अगर कोई व्यक्ति 125 औरतों के साथ ज़्यादती करता है तो इम्कान (सम्भावना) यह है कि उसे एक साल से भी कम क़ैद की सज़ा होगी।

अगर अमरीकी क़ानून में बलात्कार की सज़ा उम्र क़ैद है लेकिन अगर मुजरिम पहली बार गिरफ़तार हुआ है तो क़ानून उसे एक मौक़ा देने के हक़ में है और इसी लिए 50 फ़ीसद घटनाओं में मुजरिमों को एक साल से भी कम सज़ा सुनाई जाती है।

खुद हिन्दुस्तान में सूरतेहाल यह है कि नेशनल क्राइम ब्योरो की एक रिपोर्ट के मुताबिक़, जो एक दिसम्बर 1992 ई० को प्रकाशित हुई है, हिन्दुस्तान में हर 54 मिन्ट के बाद बलात्कार का एक कैस रिपोर्ट होता है। इसी रिपोर्ट में बताया गया है कि हर 26 मिन्ट के बाद शारिरिक शोषण की एक घटना होती है और हर एक घन्टे में 43 मिन्ट के बाद जहेज़ की वजह से क़त्ल की एक वारदात होती है।

अगर हमारे देश में होने वाली बलात्कार की वारदातों की कुल संख्या मालूम की जाए तो तक़रीबन हर दो मिन्ट के बाद एक वारदात की औसत निकलेगी।

अब मैं एक सादा सा सवाल पूछना चाहता हूं। यह बताइए कि अगर अमरीका की हर औरत परदा करना शुरू कर दे तो क्या होगा?

क्या बलात्कार की घटनाओं की शरह (दर) यही रहेगी?

क्या इन घटनाओं में बढ़ोतरी होगी?

या इन घटनाओं में कमी आएगी?

इस्लामी शिक्षा को अगर ग़ौर से देखा जाए तो इस्लाम हुक्म देता है कि कोई औरत परदा करे या न करे, मर्द के लिए ज़रूरी है कि वह नज़रें नीची रखे।

और अगर कोई मर्द बलात्कार का क़ुसूरवार पाया जाता है तो इस्लाम में इस के लिए सज़ा-ए-मौत है। किया आप के खयाल में यह "वहशियाना सज़ा" है?

मैं ने यह सवाल बहुत से लोगों से किया है और आप से भी करना चाहता हूं। मान लीजिए आप की बहन के साथ ज़ियादती होती है और आप को जज बना दिया जाता है। इस बात को छोड़ कर कि इस्लामी क़ानून क्या कहता है इस को भी छोड़ दें कि हिन्दुस्तानी क़ानून क्या कहता है और इस को भी छोड़ दीजिए कि अमरीकी क़ानून क्या कहता है? आप बताइए कि अगर आप को जज बना दिया जाता है तो आप मुजरिम को किया सज़ा देंगे?

हर किसी ने यही जवाब दिया। "सज़ा-ए-मौत"

कुछ तो इस से भी आगे बढ़ गए और कहा कि वह मुजरिम को तकलीफ़े दे दे कर हलाक करना पसंद करेंगे।

मैं दोबारा पूछता हूं कि अगर अमरीका में इस्लामी क़ानून लागू कर दिया जाए तो इन वारदातों में इज़ाफ़ा होगा? कमी होगी? या उन की तादाद यही रहेगी?

अगर हिन्दुस्तान में इस्लामी क़ानून लागू कर दिया जाए तो फिर क्या होगा? क्या बलात्कार की शरह (दर) यही रहेगी? कमी होगी या बढ़ जाएगी?

अगर हम तजज़िया करें तो जवाब साफ़ है।

आप कहते हैं कि आप ने औरत को हुक़ूक़ दिये हैं। मगर यह हुक़ूक़ सिर्फ़ दिखावे के लिए दिये गये हैं अमलन आप ने औरत को एक तवायफ़ और एक दाश्ता (रखेल) की हैसियत दे दी है।

मैं सिर्फ़ परदे की बुनियाद पर कई दिन तक बातचीत कर सकता हूं। लेकिन मैं अपना जवाब छोटा करते हुए एक मिसाल पेश करना चाहूंगा।

मान लीजिए दो औरतें हैं जो आपस में जुड़वां बहनें हैं और दोनो औरतें ख़ूबसूरत हैं। दोनो एक गली में से गुज़र रही हैं। गली के नुक्कड़ पर एक बदमाश खड़ा है। जो लड़कियों को छेड़ता है, तंग करते हैं। यह दोनो औरतें बराबर ख़ूबसूरत हैं लेकिन एक इस्लामी लिबास में है, यानी उस ने परदा किया हुआ है जब कि दूसरी मग़रिबी (पश्चिमी) लिबास में है यानी इस ने मिनी स्कर्ट पहनी हुई है। अब यह बदमाश इन में से किसे छेड़ेगा? ज़ाहिर है कि मग़रिबी लिबास वाली ख़ातून को।

या मान लीजिए कि इन में से एक औरत तो परदे में है और दूसरी भी शलवार कमीज़ में है लेकिन उस का लिबास तंग है, सर से दोपट्टा ग़ायब है, इस सूरत में भी वह किसे छेड़ेगा? परदे वाली औरत को या बेपरदा औरत को? साफ़ ज़ाहिर है कि दूसरी औरत को।

यह इस बात का अमली सुबूत है कि इस्लाम ने औरत को हिजाब का हुक्म उसकी इज़्ज़त और वक़ार की हिफ़ाज़त के लिए दिया है उस की इज़्ज़त घटाने के लिए नहीं।

प्र०-7 इस्लाम मुसलमान मर्दों को तो अहले किताब (आसमानी किताब के मानने वाले) औरत से शादी की इजाज़त देता है लेकिन मुसलमान औरतों को अहले किताब मर्दों से शादी की इजाज़त नहीं देता, ऐसा क्यों है?

उ०- भाई ने सवाल पूछा है कि क़ुरआन मुसलमान मर्दों को तो एहले किताब औरत से शादी की इजाज़त देता है लेकिन मुसलामन औरत को अहले किताब मर्द से शादी की इजाज़त नहीं देता, इन की बात बिल्कुल सही है।

सूर:मायदा में इस हवाले से अल्लाह तआला फ़रमाता है:

اَلْيَوْمَ اُحِلَّ لَكُمُ الطَّيِّبٰتُ وَطَعَامُ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ حِلٌّ لَّكُمْ وَطَعَامُكُمْ حِلٌّ لَّهُمْ وَالْمُحْصَنٰتُ مِنَ الْمُؤْمِنٰتِ وَالْمُحْصَنٰتُ

مِنَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ مِنْ قَبْلِكُمْ اِذَآ اٰتَيْتُمُوْهُنَّ اُجُوْرَهُنَّ مُحْصِنِيْنَ غَيْرَ مُسٰفِحِيْنَ وَلَا مُتَّخِذِيْٓ اَخْدَانٍ وَمَنْ يَّكْفُرْ بِالْاِيْمَانِ فَقَدْ حَبِطَ عَمَلُهٗ وَهُوَ فِى الْاٰخِرَةِ مِنَ الْخٰسِرِيْنَ. (٥:٥)

"आज तुम्हारे लिए सब पाकीज़ा चीज़ें हलाल कर दी गई हैं और अहले किताब का खाना भी तुम को हलाल है और तुम्हारा खाना उन को हलाल है और पाक दामन मौमिन औरतें और पाक दामन अहले किताब औरतें भी (हलाल हैं) जब कि उनका मह्र दे दो। और उन से इज़्ज़त क़ायम रखना मक़सद हो न खुली बदकारी करनी और न छिपी दोस्ती करनी और जो व्यक्ति ईमान का मुन्किर (इन्कार करने वाला) हुआ उस के अमल ज़ाया (बर्बाद) होग गए और वह आख़िरत में नुक़सान पाने वालों में से होगा।"

इस आयत की रोशनी में इस्लाम का हुक्म यह है कि मुसलमान मर्द अहले किताब औरत से शादी कर सकता है इस की वजह किया है? इस की वजह यह है कि जब एक अहले किताब औरत यहूदी या ईसाई औरत एक मुसलमान मर्द से शादी करेगी तो उसका शौहर या उसके शौहर के ख़ानदान और घर वाले उस औरत की पवित्र हस्तियों यानी अंबियां-ए-किराम की तौहीन या उनकी शान में गुसताख़ी के क़ुसूरवार नहीं होंगे क्योंकि मुसलमान होने की हैसियत से हम यहूदियों और ईसाईयों के अंबियां-ए-किराम यानी हज़रत मूसा और हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम की भी इज़्ज़त और एहतराम करते हैं। जिन अंबिया अलै० पर उन का ईमान है उन पर हमारा भी ईमान है। हज़रत आदम, हज़रत नूह, हज़रत दाऊद, हज़रत मूसा और हज़रत ईसा अलै० पर हम भी ईमान रखते हैं।

चूंकि इस अहले किताब औरत के अंबिया-ए-किराम हमारे लिये भी मोहतरम (इज़्ज़त के क़ाबिल) हैं इस लिए मुसलमान ख़ानदान में इस औरत का मज़ाक़ नहीं उड़ाया जाएगा। लेकिन अहले किताब यानी यहूदी और ईसाई हमारे नबी (स.अ.व.) पर ईमान नहीं रखते। लिहाज़ा

अगर एक मुसलमान औरत अहले किताब ख़ानदान में जाएगी तो वहां उसके नबी (स.अ.व.) का एहतराम और पाकी का लिहाज़ नहीं रखा जाएगा और मुम्किन है कि इस के अक़ीदों का मज़ाक़ उड़ाया जाए।

यही वजह है कि मुसलमान औरत को एहले किताब मर्द से शादी की इजाज़त नहीं दी गई जबकि मुसलमान मर्द को अहले किताब औरत से शादी की इजाज़त है।

सवाल पूछने वाले भाई ने एक और आयत की तरफ़ भी इशारा किया है। यह सूर:बक़रह की एक आयत है जिस में इशारा होता है:

وَلَا تَنْكِحُوا الْمُشْرِكٰتِ حَتّٰى يُؤْمِنَّ وَلَاَمَةٌ مُّؤْمِنَةٌ خَيْرٌ مِّنْ مُّشْرِكَةٍ
وَلَوْ اَعْجَبَتْكُمْ وَلَاتُنْكِحُوا الْمُشْرِكِيْنَ حَتّٰى يُؤْمِنُوْا وَلَعَبْدٌمُّؤْمِنٌ
خَيْرٌمِّنْ مُّشْرِكٍ وَّلَوْ اَعْجَبَكُمْ اُولٰئِكَ يَدْعُوْنَ اِلَى النَّارِ وَاللّٰهُ يَدْعُوْا
اِلَى الْجَنَّةِ وَالْمَغْفِرَةِ بِاِذْنِهٖ وَيُبَيِّنُ اٰيٰتِهٖ لِلنَّاسِ لَعَلَّهُمْ يَتَذَكَّرُوْنَ. (۲۲۱:۲)

"और (मोमिनों) मुश्रिक औरतों से जब तक ईमान न लाएं निकाह न करना क्योंकि मुश्रिक औरत चाहे तुम को कैसी ही भली लगे उस से मोमिन लोन्डी बेहतर है और (इसी तरह) मुश्रिक मर्द जब तक ईमान न लाए मोमिन औरतों को उनकी ज़ौजियत (निकाह) में न देना क्योंकि मुश्रिक मर्द चाहे तुम को कैसा ही भला लगे, मोमिन ग़ुलाम बेहतर है। यह (मुश्रिक) लोगों को दोज़ख़ की तरफ़ बुलाते हैं और अल्लाह अपनी महरबानी से बेहिश्त (जन्नत) और बख़्शिश की तरफ़ बुलाता है और अपने हुक्म लोगों से खोल कर बयान करता है ताकि नसीहत हासिल करें।"

मानों एक काफ़िर औरत दुनिया की अमीरतरीन औरत क्यों न हो। दुनिया की ख़ूबसूरत औरत क्यों न हो वह बरतानिया की मलिका ही क्यों न हो एक मुसलमान लौन्डी इस से बेहतर है।

इस आयत में यह भी फ़रमाया गया है मुश्रिक मर्द से अपनी बेटियों का निकाह न करो क्योंकि एक काफ़िर मर्द कितना ही अच्छा

क्यों न हो एक मुसलमान ग़ुलाम भी इस से बेहतर है।

हमें क़ुरआनी आदेशों को देखना चाहिए।

सूर:मायदा में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

لَقَدْ كَفَرَ الَّذِيْنَ قَالُوْٓا اِنَّ اللّٰهَ هُوَالْمَسِيْحُ ابْنُ مَرْيَمَ وَقَالَ الْمَسِيْحُ
يٰبَنِىْٓ اِسْرَآئِيْلَ اعْبُدُو اللّٰهَ رَبِّىْ وَرَبَّكُمْ اِنَّهٗ مَنْ يُّشْرِكْ بِاللّٰهِ فَقَدْ
حَرَّمَ اللّٰهُ عَلَيْهِ الْجَنَّةَ وَمَا ويهُ النَّارُ وَمَا لِلظّلمين من انصار. (۷۲:۵)

"बिला शुब्हा वह लोग काफ़िर हैं जो कहते हैं कि मरयम के बेटे (ईसा अलै०) मसीह ख़ुदा हैं। हालांकि मसीह अलै० यहूद से यह कहा करते थे कि ऐ बनी इसराईल! अल्लाह ही की इबादत करो जो मेरा भी परवरदिगार है और तुम्हारा भी (और जान रखो कि) जो व्यक्ति अल्लाह के साथ शिर्क करेगा उस पर बेहिश्त (जन्नत) को हराम कर देगा और उसका ठिकाना दोज़ख़ है और ज़ालिमों का कोई मददगार नहीं।"

एक और जगह अल्लाह तआला फ़रमाता है:

كُنْتُمْ خَيْرَ اُمَّةٍ اُخْرِجَتْ لِلنَّاسِ تَاْمُرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ وَتَنْهَوْنَ
عَنِ الْمُنْكَرِ وَتُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ وَلَوْ اٰمَنَ اَهْلُ الْكِتٰبِ لَكَانَ
خَيْرًا لَّهُمْ مِنْهُمُ الْمؤْمِنُوْنَ وَاَكْثَرُهُمُ الْفٰسِقُوْنَ. (۱۱۰:۳)

"(मोमिनो!) जितनी उम्मतें (यानी क़ौमें) लोगों में पैदा हुई तुम उन सब से बेहतर हो कि नेक काम करने को कहते हो और बुरे कामों से मना करते और अल्लाह पर ईमान रखते हो और अगर अहले किताब भी ईमान ले आते तो उनके लिए बहुत अच्छा होता। उन में ईमान लाने वाले भी हैं (लेकिन थोड़े) और अकसर बेईमान हैं।"

गोया क़ुरआन का हुक्म यह है कि अहले किताब में से भी उन्हीं औरतों से शादी करने की इजाज़त है जो ईमान लाने वाली हैं। जो हज़रत ईसा को ख़ुदा या ख़ुदा का बेटा नहीं बल्कि पैग़म्बर तस्लीम करती हैं। और एक अल्लाह पर ईमान रखती हैं।

प्र०-8 इस्लाम में औरत को, चाहे वह शादीशुदा हो या कुंवारी वसीयत करने की इजाज़त क्यों नहीं है?

उ०- बहन ने पूछा है इस्लाम में औरत को वसीयत करने की इजाज़त क्यों नहीं है। यह बिल्कुल ग़लत है जैसा कि मैं ने अपनी बातचीत के दौरान भी बताया था, इस्लाम ने औरत को पूरे आर्थिक हुकूक़ दिए हैं और ये हुकूक़ उसने मग़्रिब के मुक़ाबले 1400 साल पहले ही दे दिऐ थे।

मैं ने अपनी बातचीत के दौरान साफ़ तौर पर कहा कि कोई भी आक़िल और बालिग़ औरत अपने उन हुकूक़ का इस्तेमाल कर सकती है और ज़ाहिर है कि यह आक़िल और बालिग़ होने वाली शर्त तो ज़रूरी होगी। कोई भी आक़िल और बालिग़ औरत, चाहे वह शादी शुदा है या ग़ैर-शादी शुदा यह हक़ रखती है कि आज़ादी से अपनी जायदाद के बारे में कोई भी फ़ैसला कर सके। वह चाहे तो इस सिलसिले में किसी से आपस में मिलकर सलाह कर सकती है वरना उसकी भी पाबंदी नहीं।

उसे वसीयत करने का भी हक़ हासिल है और इस्लाम इस से बिल्कुल मना नहीं करता।

प्र०-9 अगर इस्लाम मर्द और औरत को बराबर समझता है तो फिर इस की क्या वजह है कि मर्द को तो चार शादियों की इजाज़त दी गई है लेकिन औरत को यह इजाज़त नहीं दी गई?

उ०- मेरे भाई ने सवाल पूछा है कि अगर इस्लाम मर्द को चार शादियों की इजाज़त देता है तो औरत को यह इजाज़त क्यों नहीं देता? औरत क्यों मर्द की तरह एक से ज़्यादा शादियां नहीं कर सकती?

इस सिलसिले में आप को चंद बातें ज़हन में रखनी चाहिए।

पहली बात तो यह है कि मर्द में जिंसी ख़्वाहिश और जज़्बा औरत के मुक़ाबले में ज़्यादा होता है।

दूसरी बात यह है कि दोनो जिंसों की बायोलोजिकल बनावट में फ़र्क़ इस किस्म का है कि मर्द के लिए एक से ज़्यादा बीवीयों के साथ ज़िन्दगी गुज़ारना आसान है जब कि औरत के लिए बहुत मुश्किल तिब्बी साइंस हमें बताती है कि अय्यामे हैज़ (माहवारी) के दौरान कुछ ज़हनी और नफ़सियाती तबदीली से गुज़रती है। जिस की वजह से इस के मिज़ाज में चिड़चिड़ापन पैदा हो जाता है। यही वजह है कि मियां बीवी के बीच ज़्यादातर झगड़े इन्हीं दिनों में होते हैं।

औरतों के अपराधों के बारे में एक रिपोर्ट अमरीका से प्रकाशित हुई है। इस रिपोर्ट में बताया गया है कि इन्हीं दिनों में ज़्यादा औरतें जुर्म में शामिल पाई गईं।

इस लिए अगर एक औरत के एक से ज़्यादा शौहर हैं तो उस के लिए ज़हनी तौर पर इस सूरतेहाल से निपटना बहुत मुश्किल है।

एक और वजह यह है कि नई तिब्बी जानकारी के मुताबिक़ अगर एक औरत एक से ज़्यादा मर्दों के साथ शारिरिक सम्बंध रखती है तो उसके बीमारियों के शिकार होने और बीमारियां फैलाने की उम्मीदें बहुत ज़्यादा हैं। जब अगर एक मर्द एक से ज़्यादा शादियां करता है तो ऐसी उम्मीदें न होने के बराबर हैं।

एक नुक्ता यह भी है कि अगर मर्द की एक से ज़्यादा बीवीयों से औलाद है तो उसके हर बच्चे को अपनी मां का भी इल्म होगा और बाप का भी यानी यह बच्चा अपने मां-बाप की यक़ीनी पहचान कर सकेगा। दूसरी तरफ़ अगर एक औरत के शोहर एक से ज़्यादा हैं तो उस के बच्चों को अपनी मां का तो पता होगा लेकिन बाप का पता नहीं होगा।

इस्लाम मां-बाप की पहचान को बहुत ज़्यादा अहमियत देता है, और माहीरीने नफ़सियात भी इस बात को मानते हैं। उनका कहना है कि अगर बच्चे को अपने मां-बाप का पता न हो तो यह बात इस के

लिए जेहनी सदमे की वजह बन सकती है। यही वजह है कि बद-किरदार औरतों के बच्चों का बचपन ज़्यादातर बहुत बुरा गुज़रता है।

अगर एक ऐसे बच्चे को आप स्कूल में दाख़िल करवाना चाहें तो किया करेंगे। वल्दियत (बाप का नाम) के ख़ाने में दो नाम लिखने पड़ेंगे। आप यह भी जानते हैं कि ऐसे बच्चे को क्या कह कर पुकारा जाएगा?

मैं जानता हूं कि आप जवाब में कुछ दलीलें पेश कर सकते हैं। मिसाल के तौर पर आप कह सकते हैं कि अगर बे-औलादी के वजह से, बीवी के बांझ होने की वजह से शौहर को दूसरी शादी की इजाज़त है तो शौहर में कोई ख़राबी होने की सूरत में बीवी को दूसरी शादी करने की इजाज़त क्यों नहीं है?

इस सिलसिले में आप को बताना चाहूंगा कि कोई मर्द सौ फ़ीसद नामर्द नहीं होता। अगर वह जिंसी अमल अंजाम दे सकता है तो उसके बाप बनने की उम्मीदें रहती हैं। चाहे वह नसबंदी ही क्यों ना करवाले। लिहाज़ा औलाद की वल्दियत (बाप का नाम) में शक बेहरहाल मौजूद रहेगा कोई भी डॉक्टर आप को सौ फ़ीसद गारन्टी नहीं दे सकता कि यह व्यक्ति बाप नहीं बन सकता।

इसी तरह आप यह भी कह सकते हैं कि अगर बीवी के हादसे का शिकार होने या सख़्त बीमार होने की सूरत में शौहर दूसरी शादी कर सकता है तो शौहर के किसी हादसे का शिकार होने या बीमार होने की सूरत में यही इजाज़त बीवी को भी होनी चाहिए।

इस सिलसिले में अर्ज़ है कि ऐसी किसी सूरतेहाल के दो तरह के असरात ज़ाहिर होंगे। एक तो यह होगा कि शौहर के लिए बीवी बच्चों के ख़र्च पूरे करना मुम्किन नहीं रहेगा। और दूसरे यह कि वह बीवी के अज़दवाजी हुक़ूक़ (बीवी का हक़) अदा नहीं कर सकेगा।

जहां तक पहले मस्ले का सम्बंध है इस्लाम ऐसी किसी सूरतेहाल के लिए "ज़कात" का ज़रिया उपलब्ध करता है। वह लोग जिन के पास आमदनी का कोई ज़रिया नहीं है इन की मदद ज़कात की रक़म से की जानी चाहिए।

दूसरे मस्ले का हल यह है कि तिब् (चिकित्सा) साइंस की जांच पड़ताल के मुताबिक़ औरत में जिंसी ख़्वाहिश मर्द के मुक़ाबले कम होती है लेकिन अगर औरत समझे कि वह ग़ैर-मुतमईन (असन्तुष्ट) है तो उस के पास "खुलअ" के ज़रिये अलग होने का रास्ता मौजूद है। वह अपने शौहर से खुलअ लेकर दूसरी शादी कर सकती है। इस तरह औरत का कोई नुक़सान नहीं है। क्योंकि खुलअ के ज़रिये अलग होने वाली औरत सेहतमंद होती है। और दोबारा शादी कर सकती है। दूसरी सूरत में अगर वह खुद बीमार या माज़ूर (अपाहिज) हो तो कौन उस से शादी करेगा।

प्र०-10 यूं तो तमाम धर्मों की पवित्र किताबों में अच्छी बातें लिखी हुई हैं लेकिन इन धर्मों के मानने वालो का व्यवहार औरत के साथ इंसाफ़ का नहीं रहा है। असल अहमियत किताबों में लिखी हुई तालीमात की है या अमली व्यवहार की?

उ०- मेरे भाई ने बहुत अच्छा सवाल पूछा है। उनका कहना है कि पवित्र किताबों में तो अच्छी बातें ही लिखी है। लेकिन सवाल तो यह है कि लोग अमलन किया करते है। यक़ीनन हमें दिखावे की बातचीत से ज़्यादा अहमियत अमल को देनी चाहिए। लिहाज़ा मैं इस बात की पूरी हिमायत करता हूं। और यही हम कर रहे हैं। जैसा कि मैं ने अपनी बातचीत के दौरान भी स्पष्ट किया बहुत से मुस्लिम समाज क़ुरआन व सुन्नत की तालीमात से दूर हट चुके हैं और हम यही कर रहे हैं कि लोगों को दावत दें कि वह दोबारा क़ुरआन व सुन्नत की तरफ़ लोट आएं।

जहां तक सवाल के पहले हिस्से का ताअल्लुक़ है कि तमाम धार्मिक किताबों में अच्छी बाते ही लिखी हुई हैं तो मैं इस बात से बिल्कुल सहमती नहीं रखता। मैं आप की बात से सहमत नहीं हूं कि तमाम पवित्र ग्रंथों में अच्छी बातें हैं और हमें इन के बारे में बात ही नहीं करनी चाहिए।

मैं "इस्लाम और दूसरे धर्मों में औरत का मुक़ाम" के विषय पर एक लेक्चर दे चुका हूं जिस में मैं ने इस्लाम में औरत के मुक़ाम का मुक़ाबला बुद्धमत्, हिन्दूमत्, ईसाईयत और यहूदियत में औरत के मुक़ाम के साथ किया था। मेरा वह लेक्चर सुन कर आप ख़ुद फ़ैसला कर सकते हैं कि कौन सा धर्म औरतों को ज़्यादा हुक़ूक़ देता है। अब हमें करना यह है कि इन तालीमात पर अमल भी करें।

और इन तालीमात पर अमल भी किया जा रहा है। कुछ पहलुओं पर अमल हो रहा है और कुछ पर नहीं। मिसाल के तौर पर जहां तक हुदूद के लागू और इस्लामी सज़ाओं का सम्बंध है। सऊदी अरब में इस पर अमल हो रहा है। अलहम्दुलिल्लाह सऊदी हुकूमत इस हवाले से बहुत अच्छा काम कर रही है। अगरचे कुछ मुआमलात में वे भी क़ुरआन से दूर हट गए हैं। हमें करना यह चाहिए कि सऊदी अरब के निज़ामे क़ानून की मिसाल सामने रखें, इस का जायज़ा लें और अगर यह व्यवस्था प्रभावित है तो पूरी दुनिया में इस पर अमल किया जाए।

इसी तरह अगर किसी और समाज में इस्लाम के समाजिक क़ानून पर अमल हो रहा है तो इस का भी जायज़ा लिया जाना चाहिए और अगर वह प्रभावित है तो पूरी दुनिया में इस को लागू कर देना चाहिए।

मेरे भाई हम यहां इस लिए जमा हुए हैं कि आप को बता सकें कि इस्लामी क़ानून ही बेहतरीन क़ानून है। अगर हम इस क़ानून पर अमल नही कर रहें हैं तो यह हमारा क़ुसूर है, दीन इस्लाम का नहीं।

इसी लिए हम ने लोगों को बुलाया है ताकि लोग क़ुरआन व हदीस की तालीमात को सही ढंग से समझ सकें और इन तालीमात पर अमल कर सकें।

मैं उम्मीद रखता हूं कि सवाल का जवाब मिल चुका होगा।

प्र०-11 इस्लाम के मुताबिक़ कोई औरत पैग़म्बर क्यों नहीं हो सकती?

उ०- मेरी बहन ने सवाल पूछा है कि इस्लाम में किसी औरत को पैग़म्बर का दर्जा क्यों नहीं मिला? अगर "पैग़म्बर" से आप की मुराद कोई ऐसी शख़्सियत है जिस पर अल्लाह तआला की "वही" नाज़िल होती हो और वह किसी क़ौम की रहनुमाई भी करे तो फिर आप की बात ठीक है कि इस्लाम में ऐसी कोई औरत पैग़म्बर मौजूद नहीं है। क़ुरआन साफ़ तौर पर बताता है कि ख़ानदान का सरबराह (मुखिया) मर्द है। अगर ख़ानदान का सरबराह मर्द है तो फिर क़ौम की रहनुमाई औरत किस तरह कर सकती है?

जैसा कि मैं ने पहले भी बताया कि रहनुमाई की सूरत में औरत को इमामत भी करनी पड़ेगी। अगर एक औरत इमाम है और मुक़्तदी (इमाम के पीछे नमाज़ पढ़ने वाले) मर्द हैं तो फिर अरकाने नमाज़ यानी रुकू व सुजूद के दौरान ज़रूर नमाज़ियों को परेशानी होगी। एक पैग़म्बर को आम लोगों के साथ लगातार मिलते-जुलते रहना होता है। लेकिन अगर एक औरत पैग़म्बर होती तो इस के लिए यह मुम्किन न होता। क्योंकि इस्लाम मर्द औरत के आज़ादी के साथ मेल-जोल की इजाज़त नहीं देता। इसी तरह अगर एक औरत पैग़म्बर हो और वह हामला (गर्भवती) हो जाए तो ज़ाहिर है कि कुछ वक़्त तक वह अपने कामों को अंजाम नहीं दे सकेगी। एक मर्द के लिए एक ही वक़्त में बतौर बाप और बतौर पैग़म्बर अपनी ज़िम्मेदारियां निभाना आसान था जबकि औरत के लिए ऐसा करना बहुत मुश्किल था।

लेकिन अगर पैग़म्बर से आप की मुराद कोई पवित्र हस्ती है तो

फिर ऐसी कई मिसालें मौजूद हैं। बेहतरीन मिसाल जो मैं आप के सामने पेश कर सकता हूं वह हज़रत मरयम की है।

अल्लाह तआला कुरआन मजीद में इनके बारे में फ़रमाता है:

وَاِذْ قَالَتِ الْمَلٰٓئِكَةُ يٰمَرْيَمُ اِنَّ اللّٰهَ اصْطَفٰكِ
وَطَهَّرَكِ واصْطَفٰكِ عَلٰى نِسَآءِ الْعٰلَمِيْنَ. (٣:٤٢)

"और जब फ़रिश्तों ने मरयम से कहा, कि मरयम! अल्लाह ने तुम को बरगज़ीदा (महान हस्ती) किया है और पाक बनाया है और जहान की औरतों में मुन्तख़ब (चुना) किया है।"

लिहाज़ा अगर आप पैग़म्बर से मुराद अल्लाह की चुनी हुई महान हस्ती लेते हैं तो फिर हज़रत मरयम यानी हज़रत ईसा अलै० की वालिदा (मां) की मिसाल हमारे सामने है। और मिसाले भी मौजूद हैं।

अगर आप कुरआन मजीद की सूर:तहरीम को वढ़ें तो आप यह भी देखेंगे:

وَضَرَبَ اللّٰهُ مَثَلًا لِّلَّذِيْنَ آمَنُوْا امْرَاَةَ فِرْعَوْنَ اِذْ قَالَتْ رَبِّ ابْنِ لِىْ عِنْدَكَ
بَيْتًا فِى الْجَنَّةِ وَنَجِّنِىْ مِنْ فِرْعَوْنَ وَعَمَلِهٖ وَنَجِّنِىْ مِنَ الْقَوْمِ الظّٰلِمِيْنَ. (٦٦:١١)

"और मौमिनो के लिए (एक) मिसाल (तो) फ़िरओन की बीवी की बयान फरमाई कि इस ने अल्लाह से इल्तिजा कि कि ऐ मेरे परवरदिगार! मेरे लिये बेहिश्त (जन्नत) में अपने पास एक घर बना और मुझे फ़िरओन और उसके अमल से निजात बख़्श और ज़ालिम क़ौम से मुझ को निजात दे।"

ज़रा अंदाज़ा लगाइए हज़रत आसिया फ़िरओन की बीवी हैं यानी अपने वक़्त के ताक़तवर शख़्स की मलिका और वह तमाम आसाइशों और सहूलतों को रद्द करके जन्नत के घर की दुआ कर रही हैं। इस्लाम में हज़रत मरयम और हज़रत आसिया अलैहुमस्सलाम के अलावा हज़रत ख़दीजा र.त.अन्हा और हज़रत फ़ातिमा र.त.अन्हा जैसी बरगज़ीदा (महान हस्ती) औरतें भी मौजूद हैं।

मैं उम्मीद रखता हूं कि आप को अपने सवाल का जवाब मिल चुका होगा।

प्र०-12 आप ने कहा कि इस्लाम में ज़्यादा से ज़्यादा चार शादियों की इजाज़त है फिर पैग़म्बर इस्लाम (स.अ.व.) ने ग्यारह शादियां क्यों कीं?

उ०- भाई ने सवाल पूछा है कि इस्लाम में तो ज़्यादा से ज़्यादा चार शादियों की इजाज़त है फिर पैग़म्बर इस्लाम (स.अ.व.) ने ग्यारह शादियां क्यों कीं?

भाई की यह बात बिल्कुल ठीक है कि इस्लाम में ज़्यादा से ज़्यादा चार शादियां करने की इजाज़त दी गई है।

सूर:निसा में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

فَانْكِحُوْا مَا طَابَ لَكُمْ مِنَ النِّسَآءِ مَثْنٰى وَثُلٰثَ وَرُبٰعَ. (٤:٣)

"तो जो औरतें तुम को पसन्द आएं उन में से दो-दो, तीन-तीन, चार-चार से निकाह कर लो।"

लेकिन सूर:एहज़ाब में अल्लाह तआला यह भी फ़रमाता है:

لَا يَحِلُّ لَكَ النِّسَاءُ مِنْ بَعْدُ وَلَآ اَنْ تَبَدَّلَ بِهِنَّ مِنْ اَزْوَاجٍ وَّلَوْ اَعْجَبَكَ
مِنْهُنَّ اِلَّا مَامَلَكَتْ يَمِيْنُكَ وَكَانَ اللّٰهُ عَلٰى كُلِّ شَیْءٍ رَّقِيْبًا. (٣٣:٥٢)

"(ऐ नबी (स.अ.व.) इस के बाद तुम्हारे लिए दूसरी औरतें हलाल नहीं हैं। और न उसकी इजाज़त है कि उनकी जगह और बीवीयां ले आओ, चाहे उनका हुस्न तुम्हें कितना ही पसन्द हो, अलबत्ता लोन्डियों की तुम्हें इजाज़त है। अल्लाह हर चीज़ पर निगरां है।"

कुरआन मजीद की यह आयत हुज़ूर अकरम (स.अ.व.) को अपनी तमाम मौजूद बीवियां रखने की इजाज़त दे रही है लेकिन इस के साथ ही और निकाह करने से भी रोक रही है। अलावा लोन्डियों के।

पैग़म्बर इस्लाम (स.अ.व.) न सिर्फ़ यह कि और शादियां नही कर सकते थे बल्कि उन बीवीयों का भी तलाक़ नहीं दे सकते थे। नबी करीम (स.अ.व.) की बीवियां मुसलमानों की माएं उम्महातुल मोमीनीन हैं। लिहाज़ा रसूल अकरम (स.अ.व.) के विसाल (इन्तक़ाल) के बाद भी कोई इन से शादी नहीं कर सकता था।

अगर आप रसूले खुदा (स.अ.व.) की तमाम शादियों का जायज़ा लें तो आप को मालूम होगा कि ये शादियां या तो समाजिक सुधार के लिए कीं गई थीं और या सियासी वजहों से। अपनी ख़्वाहिश की तसकीन के लिए यह शादियां हरगिज़ नहीं की गई थीं।

आप (स.अ.व.) ने पहला निकाह हज़रत ख़दीजा (र.त.अन्हा) से किया। इस वक्त नबी करीम (स.अ.व.) की अपनी उम्र 25 साल थी, जबकि हज़रत ख़दीजा (र.त.अन्हा) की उम्र 40 साल थी। जब तक हज़रत ख़दीजा र.त.अन्हा ज़िन्दा रहीं, आप (स.अ.व.) ने दूसरा निकाह नहीं किया। आंहुजूर (स.अ.व.) की उम्र 50 साल थी, जब हज़रत ख़दीजा (र.त.अन्हा) का इन्तक़ाल हुआ।

अपनी उम्र के 53वीं साल से 56 साल के बीच आप (स.अ.व.) ने तमाम निकाह फ़रमाए। अगर इन शादियों की वजूहात जिंसी होतीं तो आप (स.अ.व.) जवानी में ज़्यादा निकाह करते। क्योंकि इल्म तिब् (चिकित्सा ज्ञान) तो यह कहता है कि उम्र बढ़ने के साथ जिंसी ख़्वाहिश घटती चली जाती है।

सिर्फ़ दो निकाह ऐसे हैं जो आप (स.अ.व.) ने अपनी मर्ज़ी से फ़रमाए। हज़रत ख़दीजा के साथ और हज़रत आयशा (र.त.अन्हा) के साथ बाक़ी तमाम निकाह हालात के पेशे नज़र और सियासी, समाजी सुधार के लिए किए गए थे।

सिर्फ़ दो उम्महातुल मोमीनीन के अलावा बाक़ी सब की उमरें 36 और 50 के बीच थी। हर निकाह की वजूहात और असबाब बयान

किये जा सकते हैं। मिसाल के तौर पर हज़रत जवेरिया (र.त.अन्हा) का मुआमला देखिये। आप का ताअल्लुक़ क़बीला बनी मुसतलक़ से था। इस क़बीले के साथ मुसलमानों के ताअल्लुक़ बहुत ख़राब थे। यहां तक कि मुसलमानों ने उन पर हमला कर के उन्हें हराया। इस के बाद जब हुज़ूर अकरम (स.अ.व.) ने हज़रत जवेरिया (र.त.अन्हा) से निकाह कर लिया तो मुसलमानों ने क़बीला बनी मुसतलक़ के तमाम क़ैदियों को यह कह कर रिहा कर दिया कि हम रसूल अल्लाह (स.अ.व.) के रिश्तेदारों को किस तरह क़ैद रख सकते हैं? इस वाक़िये के बाद इस क़बीले के ताल्लुक़ात मुसलमानों के साथ बहुत अच्छे हो गए।

इसी तरह हज़रत मैमूना र.त.अन्हा नजद के क़बीले के सरदार की बहन थी। यह वही क़बीला था जिस ने मुसलमानो के 70 लोगों को शहीद कर दिया था। यह क़बीला मुसलमानों के मुख़ालिफ़ों में गिना जाता था लेकिन इस शादी के बाद इस क़बीले ने मदीने को अपना मर्कज़ (केंद्र) और रसूले खुदा को अपना रहनुमा मान लिया।

उम्मुलमूमीनीन हज़रत उम हबीबा (र.त.अन्हा) मक्का के सरदार अबू सुफ़यान की बेटी थीं। लिहाज़ा ज़ाहिर है कि इस निकाह ने फ़तह मक्का के हवाले से अहम किरदार अदा किया।

उम्मुलमूमीनीन हज़रत सफ़या र.त.अन्हा एक यहूदी सरदार की बेटी थीं। और रसूल अकरम (स.अ.व.) के उन से निकाह कर लेने के बाद मुसलमानों के सम्बंध यहूदियों से खुशगवार हो गए थे।

इसी तरह आप (स.अ.व.) ने अलग-अलग सियासी और समाजी हालात के कारण यह निकाह किए। हज़रत ज़ैनब के साथ शादी यह ग़लत तसव्वुर ख़त्म करने के लिए की गई कि मुतबन्ना (गोद लिया हुआ) असल बेटे की तरह होता है और उसकी मुतलक़्क़ा (तलाक़ दी हुई औरत) के साथ शादी नहीं हो सकती।

इसी तरह रसूल अकरम (स.अ.व.) की तमाम शादियों का जायज़ा लेने के बाद यह हक़ीक़त सामने आ जाती है कि आप (स.अ.व.) ने यह निकाह जिंसी ख़्वाहिश की वजह से हरगिज़ नहीं किये थे।

मैं उम्मीद रखता हूं कि सवाल का जवाब मिल चुका होगा।

प्र०-13 इस्लाम मर्द को एक से ज़्यादा शादियों की इजाज़त देता है तो इस में औरत का क्या फ़ायदा है?

उ०- आप ने सवाल पूछा है कि मर्द को ज़्यादा शादियों की इजाज़त देने में औरत का क्या फ़ायदा है। औरत का फ़ायदा यह है कि इस तरह वह पाकबाज़ (पवित्र) रहती है। क्योंकि जैसा कि मैं ने पहले अर्ज़ किया कि अगर हर मर्द सिर्फ़ एक शादी करे तो लाखो औरतें ग़ैर-शादीशुदा रह जाएगी क्योंकि उन्हें कोई ग़ैर-शादीशुदा मर्द नहीं मिल सकेगा।

इस तरह उन औरतों के पास सिवाए अवामी मिल्कियत बन जाने के कोई रास्ता बाक़ी नहीं बचेगा। इसी लिए इस्लाम ने एक से ज़्यादा शादियों की इजाज़त दी है ताकि औरतों की इज़्ज़त महफ़ूज़ रह सके और उन्हें बद-किरदारी से महफ़ूज़ रखा जा सके।

प्र०-14 क्या इस्लाम में बच्चे को गोद लेने की इजाज़त है?

उ०- भाई पूछते हैं कि क्या इस्लाम में बच्चे को गोद लेने (Adoption) की इजाज़त है या नहीं। अगरचे गोद लेने से मुराद यह है कि आप एक ग़रीब और बेसहारा बच्चे का सहारा बने और उसको रोटी कपड़ा मकान मुहय्या करें तो यक़ीनन इस्लाम इस के हक़ में है बल्कि क़ुरआन में ग़रीब और ज़रूरतमंद लोगो की मदद पर बड़ा ज़ोर दिया गया है।

अगर आप इस तरह किसी बच्चे के लिए बाप की तरह प्यार-मोहब्बत का इज़हार करना चाहते हैं। इस के काम आना चाहते

हैं तो इस्लाम इस की हौसला अफ़ज़ाई करता है लेकिन जहां तक ताअल्लुक़ है क़ानूनी तौर पर गोद लेने का तो इस्लाम इसकी इजाज़त नहीं देता। आप क़ानूनी तौर पर इस बच्चे की वल्दियत (बाप का नाम) के ख़ाने में अपना नाम नहीं लिखवा सकते। इस बात की इस्लाम इजाज़त नहीं देता।

इस की वजह यह है कि क़ानूनी तौर पर इस बच्चे को आप की औलाद क़रार देने के नतीजे में बहुत सी पैचीदगियां पैदा हो सकती हैं।

पहली बात तो यह है कि इस बच्चे या बच्ची की अपनी पहचान ख़त्म हो जाएगी।

दूसरी बात यह है कि अगर आप बे-औलादी की वजह से बच्चे को गोद लेते हैं और इस के बाद आप की अपनी औलाद पैदा हो जाती है तो इस गोद लिए हुए बच्चे के साथ आप के व्यवहार में बदलाव आ जाएगा।

तीसरी बात यह कि अगर आप अपनी औलाद और गोद लिए हुए बच्चे की जिंस (लिंग) अलग है तो फिर एक ही घर में रहते हुए भी मुश्किलात पेश आएंगी क्योंकि वह बहरहाल हक़ीक़ी बहन भाई तो नहीं हैं। इसी तरह बालिग़ हो जाने के बाद मसाईल और पेचीदा हो जाएंगे, क्योंकि अगर वह लड़का है तो घर की औरतों को परदा करना पड़ेगा और अगर लड़की है तो उसे अपने नाम निहाद बाप से भी परदा करना पड़ेगा क्योंकि वह उसका हक़ीक़ी बाप तो नहीं है।

इस के अलावा इस तरह विरासत के मसाइल भी पैदा होंगे। मौत के बाद मरने वाले की तमाम जायदाद उस क़ानून के मुताबिक़ तक़सीम की जाती है जो क़ुरआन में बयान कर दिया गया है। अगर गोद लिए हुए बच्चे को यह माल मिलता है तो गोया दूसरे रिश्तेदारों का हक़ मारा जाता है।

अगर गोद लेने वाले शख़्स की अपनी औलाद भी मौजूद है तो फिर उस औलाद का हक़ मारा जाएगा और अगर औलाद नहीं है तो बीवी और दूसरे रिश्तेदारों का।

इसी पेचीदगी से बचने के लिए इस्लाम ने बच्चों को क़ानूनी तौर पर गोद लेने की इजाज़त नहीं दी है।

प्र०-15 आप ने अपनी तक़रीर के दौरान कहा कि तलाक़ के बाद जब तक औरत की इद्दत पूरी नहीं होती, शौहर औरत को ख़र्च अदा करने का ज़िम्मेदार है। सवाल यह है कि इद्दत के बाद औरत के ख़र्च का ज़िम्मेदार कौन होगा?

उ०- मेरी बहन ने बहुत अच्छा सवाल पूछा है तलाक़ की सूरत में इद्दत के दौरान यह मर्द का फ़र्ज़ है कि वह औरत के ख़र्च बर्दाश्त करे और उसका ख़र्च पूरा करे। यह मुद्दत ग़ालिबन तीन महीने या अगर औरत गर्भवती है तो बच्चे की पैदाइश के बाद तक है।

जैसा कि मैं ने अपनी बातचीत में कहा कि यह बाप और भाई की ज़िम्मेदारी है कि वह औरत को तमाम ज़रूरयाते ज़िन्दगी फ़राहम करें।

मान लीजिए मां-बाप और भाई यह फ़र्ज़ अदा नहीं कर सकते तो इस सूरत में यह दूसरे क़रीबी रिश्तेदारों का फ़र्ज़ बनता है, और अगर किसी वजह से वह भी ऐसा नहीं कर सकते तो इस सूरत में बहैसियत मुसलमान यह हम सब की ज़िम्मेदारी बन जाती है कि ऐसे इदारे बनाए जाएं और ज़कात की तक़सीम का ऐसा निज़ाम बनाएं कि इन औरतों को बुनियादी ज़रूरयात की फ़राहमी यक़ीनी बनाई जा सके।

उम्मीद है कि सवाल का जवाब मिल चुका होगा।

प्र०-16 आप ने अपनी बातचीत के दौरान कहा कि मर्द और औरत बराबर हैं अगर ऐसा है तो फिर दोनो को जायदाद में बराबर हिस्सा क्यों नहीं मिलता?

उ०- भाई का सवाल यह है कि अपनी बातचीत के दौरान मैं ने कहा था कि इस्लाम में मर्द और औरत को बराबर आर्थिक हुक़ूक़ हासिल है। अगर ऐसा है तो विरासत की तक़सीम के वक़्त उसे बराबर हिस्सा क्यों नहीं मिलता? आम तौर पर कहा जाता है कि औरत का हिस्सा मर्द से आधा है।

इस सिलसिले में क़ुरआन मजीद में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

"ख़ुदा तुम्हारी औलाद के बारे में तुम को फ़रमाता है कि एक लड़के का हिस्सा दो लड़कियों के बराबर है और अगर औलाद मय्यत सिर्फ़ एक लड़की हो तो उस का हिस्सा आधा। और मय्यत के मां-बाप का यानी दोनो में से हर एक का तरके में छटा हिस्सा शर्त यह है कि मय्यत के औलाद हो और अगर औलाद न हो और सिर्फ़ मां-बाप का यानी दोनो में से हर एक का तरके में छटा हिस्सा (और यह तक़सीम तरका मय्यत की) वसीयत (की तामील) के बाद जो उस ने की हो या कर्ज़ के (अदा होने के बाद जो उस के ज़िम्मे हो अमल में आएगी) तुम को मालूम नहीं कि तुम्हारे बाप दादाओ और बेटो और पोतों में से फ़ायदे के लिहाज़ से कौन तुम से ज़्यादा क़रीब है। यह हिस्से ख़ुदा के मुक़र्रर किये हुए हैं और ख़ुदा सब कुछ जानने वाला और हिक्मत वाला है।" (12,11:4)

मुख़्तसर यह कहा जा सकता है कि ज़्यादातर सूरतों में औरत का आधा हिस्सा होता है। लेकिन हर सूरत में ऐसा नहीं होता। मिसाल के तौर पर:

दोनो को ही छटा हिस्सा मिलता है। अगर मरने वाले की कोई औलाद न हो तो मां और बाप दोनो को ही छटा हिस्सा मिलता है। कभी-कभी अगर मरने वाली औरत हो, उस की औलाद भी न हो तो उस के शोहर को आधा, मां को तीसरा हिस्सा और बाप को छटा हिस्सा मिलता है। इस को मतलब यह हुआ कि कुछ सूरतें ऐसी भी

हैं जिन में औरत का हिस्सा मर्द से दो गुना हो सकता है। जैसा कि इस मिसाल में मां का हिस्सा बाप के मुक़ाबले में दो गुना है।

लेकिन मैं आप से सहमती रखता हूं कि ज़्यादातर सूरतों में औरतों का हिस्सा मर्दों के मुक़ाबले में आधा ही होता है। लेकिन इस की वजह यह है इस्लाम में आर्थिक ज़िम्मेदारियां मर्द पर डाली गई हैं और इंसाफ़ के तक़ाज़े को पूरा करने के लिए मर्द का हिस्सा ज़्यादा रखा गया है। ख़ानदान के तमाम आर्थिक ख़र्चे पूरे करने के लिए मर्द का हिस्सा ज़्यादा रखा गया है। ख़ानदान के तमाम आर्थिक ख़र्चे पूरे करने की वजह से ज़रूरी है कि औरत के मुक़ाबले में मर्द को ज़्यादा हिस्सा मिले। दूसरी सूरत में यह होगा कि हमें "मर्द के हुक़ूक़" पर भी लेक्चर देने पड़ेंगे।

मैं यहां एक मिसाल पेश करना चाहूंगा। मान लीजिए एक साहब की मौत हो गई। उन की जायदाद में से बाक़ी तमाम हुक़ूक़ अदा करने के बाद बच्चों के हिस्से में डेढ़ लाख रूपय आते हैं। इस शख़्स का एक बेटा और एक बेटी है। इस्लामी शरीअत से बेटे को एक लाख और बेटी को पचास हज़ार मिलेंगे। लेकिन बेटे पर एक पूरे ख़ानदान की ज़िम्मेदारियां हैं। लिहाज़ा इसे इस में एक लाख का ज़्यादातर हिस्सा मिसाल के तौर पर 10 हज़ार या शायद पूरा एक लाख ही इन ज़िम्मेदारियों की वजह से ख़र्च करना पड़ेगा। दूसरी तरफ़ औरत को पचास हज़ार मिलेंगे लेकिन यह सारी रक़म इसी के पास रहेगी क्योंकि इस पर एक पाई की भी ज़िम्मेदारी नहीं है। लिहाज़ा उसे ख़ानदान पर कुछ ख़र्च करने की ज़रूरत नहीं।

प्र०-17 आप ने अपनी बातचीत के दौरान कहा कि अगर किसी लड़की की शादी ज़बरदस्ती कर दी जाए तो ऐसी शादी को तोड़ा जा सकता है। मैं पूछना चाहती हूं कि क्या कोई ऐसा इदारा मौजूद है जो इस सिलसिले में बाइख़्तियार हो और कोई लड़की अपने हुक़ूक़ के सिलसिले में इस से रुजू कर सके?

उ०- बहन ने बहुत अच्छा सवाल पूछा है। इनका सवाल औरतों के हुक़ूक़ से संबंधित है। क़ुरआन व हदीस से यह बात बिल्कुल साफ़ तौर पर सामने आ जाती है कि अगर किसी औरत की शादी ज़बरदस्ती करदी जाए तो ऐसी शादी को ख़त्म कर सके। ऐसे इदारे कई मुमालिक मैं मौजूद हैं मिसाल के तौर पर ईरान और सऊदी अरब में। लेकिन बदक़िसमति से हिन्दुस्तानी हुकूमत मुसलमानों को ऐसी अदालतें बनाने की इजाज़त नहीं देती। अगरचे यहां "मुस्लिम पर्सनल ला" मौजूद है लेकिन इस में तमाम हुक़ूक़ शामिल नहीं हैं।

अगर हिन्दुस्तानी हुकूमत से दरख़्वास्त की जाए और वह इजाज़त दे तो यहां भी ऐसे इदारे क़ायम हो सकते हैं। फ़िलहाल तो महदूद हुक़ूक़ ही हासिल हैं। तमाम हुक़ूक़ नहीं दिये गए।

प्र०-18 इस्लाम मर्दों और औरतों को मिल-जुल कर काम करने की इजाज़त नहीं देता। इस बात को आप नया कहेंगे या पुराना? और सवाल का दूसरा हिस्सा यह है कि किया औरत ऐयर हॉस्टेस की नौकरी कर सकती है? यह एक अच्छी और ज़्यादा तंख़्वाह वाली नौकरी है।

उ०- जहां तक सवाल के पहले हिस्से का संबंध है कि इस्लाम औरतों और मर्दों को आज़ादाना इख़्तिलात (मेल-जोल) की इजाज़त नहीं देता। क्या यह रवय्या नया है या पुराना? तो अर्ज़ यह है कि अगर जिद्दत (नयापन) से आप की मुराद यह है कि दोनो जिंसो के इख़्तिलात (मैल-जोल) की इजाज़त दे दी जाए, औरत को ख़रीद व फ़रोख़्त की चीज़ बना कर रख दिया जाए और उसे मॉडलिंग जैसे पेशों से जोड़ दिया जाए तो यह सरासर औरत की बेइज़्ज़ती है।

क्योंकि मग़रिबी मीडिया ज़ाहिर तो यह करता है कि मग़रिबी कलचर में औरत को ज़्यादा हुक़ूक़ दिए गये हैं लेकिन हक़ीक़त में

वहां औरत की इज़्ज़त में इज़ाफ़ा करने के बजाए इस की बेइज़्ज़ती की जा रही है।

आंकड़े हमें बताते हैं कि यूनीवर्सिटियों में जाने वाली और काम करने वाली औरतों में से पचास फ़ीसद के साथ ज़्यादती होती है। पचास फ़ीसद औरतें यानी आधी औरतों के साथ। आप जानते हैं क्यों? इस लिए कि वहां औरत और मर्द को आज़ादी के साथ मिलने-जुलने की इजाज़त है। अगर आप समझते हैं कि औरतों के साथ बलात्कार की इजाज़त देना जिद्दत (नयापन) है तो फिर इस्लाम फ़रसूदा (पुराना) ही है। और अगर आप ऐसा नहीं समझते तो फिर इस्लाम जदीद तरीन मज़हब है।

अब आते हैं सवाल के दूसरे हिस्से की तरफ़। क्या इस्लाम औरत को ऐयर हॉस्टेस के तौर पर नौकरी करने की इजाज़त देता है? क्योंकि यह एक ज़्यादा तंख़्वाह वाली और मुनासिब नौकरी है। मैं पहली बात से तो सहमती करता हूं कि वाक़ई यह एक ज़्यादा तंख़्वाह वाली नौकरी है लेकिन जहां तक दूसरी बात का सम्बंध है यानी यह कि "यह एक अच्छी और मुनासिब नौकरी है" तो इस का हमें तजज़िया करना चाहिए।

ऐयर हॉस्टेस का इंतख़ाब (चुनाव) बुनियादी तौर पर "हुस्न" के हवाले से होता है। आप ने कभी कोई बद-सूरत ऐयर हॉस्टेस नहीं देखी होगी। उन्हें इस लिए चुना जाता है कि वह ख़ूबसूरत, इस लिए कि वह जवान हैं, इस लिए कि वह पुरकशिश हैं।

उन्हें ऐसा लिबास पहनने का पाबंद किया जाता है जो इस्लामी अख़्लाक़ियात के मुताबिक़ नहीं होता। उन्हें बनाव-सिंघार का भी पाबन्द किया जाता है ताकि वह मुसाफ़िरों को लुभा सके। उन्हें मुसाफ़िरों की कुछ ज़रूरयात पूरी करनी होती हैं और यह मुसाफ़िर ज़्यादातर मर्द होते हैं। कभी-कभी यह मुसाफ़िर ऐयर हॉस्टेसो को तंग

भी करते हैं लेकिन वह उन्हें कोई सख़्त जवाब नहीं दे सकती क्योंकि यह उसकी नौकरी का सवाल है। मिसाल के तौर पर अगर मुसाफ़िर कहे "मोहतरमा ज़रा मेरी सीट बेल्ट बांध दीजिए" तो ज़ाहिर है कि ऐयर हॉस्टेस को बांधना होगी।

ज़्यादातर फ़िज़ाई कम्पनियां अपनी परवाज़ों के दौरान शराब भी पेश करती हैं और इस्लाम में न सिर्फ़ शराब का पीना हराम है बल्कि उसका पेश करना भी हराम है।

तमाम फ़िज़ाई मैज़बान औरतें ही होती हैं। मर्द हज़रात यानी पर्सेज़ जहाज़ में मौजूद होते हैं लेकिन वह किचन वग़ैरा में रहते हैं यानी जहाज़ में उल्टा ही निज़ाम चलता है। मर्द बावर्ची ख़ाने में और औरत मुसाफ़िरों की ख़िदमत कर रही है।

आप यक़ीन कीजिए कि अब औरतों के बग़ैर किसी ऐयर लाइन का गुज़ारा ही नहीं यहां तक कि सऊदी ऐयर लाइन जिसे सब से ज़्यादा इस्लामी "फ़र्ज़ किया जाता है" इस का भी यही हाल है। लेकिन चूंकि वह सऊदी लड़कियां भर्ती नहीं कर सकते लिहाज़ा यह करते हैं कि ग़ैर-मुल्कि लड़कियों को भर्ती करते हैं।

यह दोहरा मैयार है। और यह दोहरा मैयार इस लिए अपनाया गया है कि फ़िज़ाई सफ़र के कारोबार में इस के बग़ैर गुज़ारा नहीं। इस कारोबार में मुसाफ़िरों को लुभाने के लिए ख़ूबसूरत औरतों को सामने लाना पड़ता है।

और आप को शदीद सदमा पहुंचेगा, अगर आप को फ़िज़ाई कम्पनियों के कुछ उसूलों का पता चल जाए। मिसाल के तौर पर इण्डियन ऐयर लाईन और ऐयर इण्डिया दोनों का उसूल यह है कि चुन लिए जाने के बाद कोई ऐयर हॉस्टेस चार साल तक शादी नहीं कर सकती। कुछ ऐयर लाईन्ज़ तो यह भी कहती हैं कि हामला (गर्भवती) होने की सूरत में नौकरी ख़त्म हो जाएगी। और 35 साल

की उम्र में उन्हें रिटायर कर दिया जाता है क्योंकि उनकी कशिश कम हो जाती है।

क्या आप इसे एक अच्छी और मुनासिब नोकरी कहते हैं?

प्र०-19 क्या इस्लाम लड़की, लड़कों के एक साथ तालीम की इजाज़त देता है?

उ०- मेरे भाई ने पूछा है कि किया इस्लाम में मख़लूत तालीम की इजाज़त है? यानी किया लड़के और लड़किया एक ही स्कूल, कॉलेज या यूनिवर्सिटि मे तालीम हासिल कर सकते हैं?

पहले हम स्कूल का मुआमला लेते हैं और तजज़िया करते हैं कि क्या लड़के लड़कियों का एक ही स्कूल में पढ़ना मुनासिब है। पिछले साल ही एक रिपोर्ट छपी है। यह रिपोर्ट **"The World This Week"** नामी रिसाले मे प्रकाशित हुई है। इस रिपोर्ट में मख़लूत (मिला-जुला) और जुदागाना तालीम वाले स्कूलो का जायज़ा लिया गया है। रिपोर्ट बरतानिया के स्कूलों के बारे में है।

इस सरवे में बताया गया है कि मजमूई तौर पर जुदागाना तालीम वाले इदारों के नतीजे मख़लूत तालीम वाले स्कूलों के मुक़ाबले में बहुत बेहतर थे। जब इस सिलसिले में टीचरों से बातचीत की गई तो उन्होंने बताया कि जुदागाना तालीम वाले इदारों में विद्यार्थी तालीम पर ज़्यादा ध्यान देते हैं। जब विद्यार्थियों से पूछा गया तो उन्होंने मख़लूत स्कूलों में पढ़ने को प्राथमिकता दी जिस की वजह साफ़ है।

इस रिपोर्ट में बताया गया कि मख़लूत इदारों में पढ़ने वाले बच्चे ज़्यादा वक़्त जिंस मुख़ालिफ़ की तवज्जह हासिल करने में ख़र्च करते हैं। उनकी ज़्यादा तवज्जह जिंस मुख़ालिफ़ के साथ ताल्लुक़ बनाने पर होता है न कि तालीम पर।

यह भी बताया गया कि बरतानवी हुकूमत जुदागाना इदारों की तादाद बढ़ाने पर गौर कर रही है। अमरीका के बारे में एक रिपोर्ट से

पता चलता है कि लड़किया तालीम पर कम और अपने हम जमातो से जिंसी मालूमात हासिल करने पर ज़्यादा वक़्त ख़र्च कर रही हैं।

हिन्दुस्तान में भी सूरतेहाल ऐसी ही है।

जब आप कालेजो और यूनिवर्सिटियों का जायज़ा लेते हैं तो जो बातें आप को स्कूलों के बारे में बताए गए वहां पर नज़र आते हैं।

मार्च 1980 ई० में "न्यूज़ वीक" में प्रकाशित होने वाली एक रिपोर्ट में यूनीवर्सिटियों में औरतों पर होने वाले जिंसी हमलो के आंकड़े दिये गये हैं। मैं वक़्त की कमी की वजह से इस रिपोर्ट की तमाम तफ़्सील आपके सामने पेश नहीं कर सकूंगा लेकिन इस रिपोर्ट की बुनियादी बात यह थी कि टीचरों ने, प्रोफ़ैसरों और लेक्चरारों ने बेहतर नम्बरों का लालच दे कर लड़कियों का जिंसी शोषण किया।

यह तो न्यूज़ वीक की रिपोर्ट थी। हिन्दुस्तान में भी यही कुछ हो रहा है। और ज़ाहिर है इस सूरतेहाल में अच्छी तालीम हासिल करने के इमकानात कम हो जाते हैं। पिछले साल ऐसी ही एक ख़बर अख़्बारों में ख़ास तौर पर सामने आई। मुझे कॉलेज का नाम याद नहीं। एक लड़की के साथ चार-पांच विद्यार्थियों ने दिन दहाड़े, कॉलेज के अन्दर ही ज्यादती की। इसी तरह एक रिपोर्ट टाईम्स ऑफ़ इण्डिया में प्रकाशित हुई यह असल में न्योयार्क टाईम्स की रिपोर्ट है जिसे टाइम्स ऑफ़ इण्डिया में नक़ल किया गया है।

इस रिपोर्ट के मुताबिक़ अमरीका में स्कूल और यूनीवर्सिटी जाने वाली 25 लड़कियां बलात्कार का शिकार होती हैं।

मैं यह पूछना चाहूंगा कि आप अपने बच्चों को स्कूलों व कॉलेजों में तालीम हासिल करने के लिए भेजना चाहते हैं या इस लिए कि वह शारिरिक शोषण का शिकार हों? अगर आप का मक़सद तालीम हासिल करना है तो फिर मैं आप को यही सलाह दूंगा कि उन्हें ऐसे इदारों में ही भेजें जहां जुदागाना तालीम है मख़लूत (मिला-जुला)

नहीं। और ऐसे इदारे बहुत हैं।

प्र०-20 आप की बातचीत से पता चला कि क़ुरूने ऊला में बहुत सी आलिम औरतें मौजूद थी लकिन मेरा सवाल यह है कि आज कितनी औरतें उलमा हैं जो क़ुरआन व हदीस की तफ़सीर कर सकती हैं और मर्द उलमा के मुक़ाबले में उनका तनासुब (अनुपात) किया है? अगर ऐसी औरतें होती तो तसलीमा नसरीन के हक़ मे बोलती?

उ०- आप को मेरी इस बात से तो सहमती है कि हुज़ूर अकरम (स.अ.व.) के मुबारक ज़माने में आलिम औरतें मौजूद थीं। जो न सिर्फ़ क़ुरआन व हदीस की तफ़सीर करती थीं बल्कि उन्हें हदीसे भी याद थीं। सिर्फ़ उम्मुल मोमीनीन हज़रत आयशा सिद्दीक़ा र.त.अन्हा से दो हज़ार दो सौ दस हदीसे रिवायत की गई हैं। लेकिन आप का सवाल ये है कि इस दौर में कितनी आलिम औरतें मौजूद हैं। आप उनका तनासुब (अनुपात) भी जानना चाहते हैं।

आलिम औरतें अच्छी ख़ासी तादाद में मौजूद हैं। और कई ऐसे इदारे हैं जहां औरतें दीनी तालीम हासिल कर रही हैं। मिसाल के तौर पर मुम्बई में और दारुल उलूम नदवतुल उलमा में, दारुल उलूम इस्लाह अल-बनात में औरतें दीनी तालीम हासिल कर रही हैं और आलिम औरतें सामने आ रही हैं। उनके तनासुब और फ़ीसद तादाद का तो मुझे इल्म नहीं है लेकिन बहरहाल आलिमा औरतों की तादाद सैंकड़ों में है।

जहां तक सवाल के दूसरे हिस्से का ताअल्लुक़ है तो इस सिलसिले में पहली बात तो यह है कि क्या तसलीमा नसरीन की हिमायत की जा सकती है? तसलीमा नसरीन के मुआमले पर मैं एक बहस में हिस्सा ले चुका हूं जिस में मेरे अलावा डॉक्टर व्यास फ़ादर परेरा और अशोक शाहानी शामिल थे जिन्होंने "लज्जा" का मराठी

ज़बान में अनुवाद किया है। बहुत से लोगों ने मुझे इस बहस में शरीक होने से मना किया और कहा कि मेरी बातों को ग़लत माने पहनाए जाएंगे। मैं फ़िक्र में था लेकिन फिर मेरे वालिद ने मुझे कहा कि "अल्लाह का नाम लो और जाओ।" मैं वहां गया और अलहम्दु लिल्लाह, सिर्फ़ अल्लाह तआला के फ़ज़्ल व करम से यह बहस निहायत कामयाब रही। यह बहस इतनी कामयाब रही कि किसी एक अख़बार में भी इस की ख़बर प्रकाशित नहीं हुई। क्या आप यक़ीन करेंगे कि किसी एक अख़बार ने भी इस बहस की रिपोर्ट को नहीं छापा। हालांकि टाइम्स ऑफ़ इण्डिया के नुमाइंदे वहां मौजूद थे, इण्डियन एक्सप्रेस के नुमाइंदे और कई दूसरे अख़बारात और न्यूज़ एजेंसियों के नुमाइंदे मौजूद थे। लेकिन किसी ने भी रिपोर्टिंग नहीं की क्यों? इस लिए कि मैं ने वह सब कुछ नही कहा जो वह सुनना चाहते थे। अगर मैं वह सब कुछ कहता तो अगले दिन बड़ी-बड़ी सुर्ख़ियां लगतीं कि मशहूर इस्लामी दानिशवर डॉक्टर ज़ाकिर नाइक ने यह कहा और वो कहा लेकिन चूंकि ऐसा नहीं हुआ लिहाज़ा कोई ख़बर नहीं लगी।

प्र०-21 मैं पूछना चाहती हूं कि इस्लाम में सिर्फ़ शोहर ही को तलाक़ देने का हक़ क्यों दिया गया है? औरत को यह हक़ क्यों हासिल नहीं?

उ०- बहन ने सवाल पूछा है कि मर्द को तो यह हक़ हासिल है कि वह अपनी बीवी को तलाक़ दे सके। लेकिन किया औरत को भी यह हक़ है कि वह तलाक़ दे सके? इस सवाल का जवाब यही है कि औरत तलाक़ नही दे सकती। तलाक़ अरबी का शब्द है और यह इसी मौक़े के लिए ख़ास है जब शौहर अपनी बीवी से अलैहदगी इख़्तियार करे। इस्लाम में मियां बीवी की अलैहदगी के पांच तरीक़े हैं।

पहला तरीक़ा तो आपसी रज़ामंदी का है। अगर दोनो फ़रीक़ यह

फ़ैसला कर लें कि बस हम और इकट्ठे नहीं चल सकते और हमें अलैहदा हो जाना चाहिए तो वह इस रिश्ते को ख़त्म कर सकते हैं।

दूसरी सूरत यह है कि शोहर अपनी मर्ज़ी से बीवी को छोड़ दे। इसे तलाक़ कहते हैं। इस सूरत में इसे महर देना पड़ता है और अगर अभी तक अदा नहीं किया गया तो अदा करना पड़ता है। और जो कुछ वह तोहफ़े में दे चुका है वह भी बीवी ही की मिल्कियत में रहता है।

तीसरी सूरत यह है कि औरत अपनी मर्ज़ी से निकाह ख़त्म करने का ऐलान कर दे। जी हां। बीवी भी इस तरह कर सकती है अगर यह बात निकाह के समझोते में तय हो जाए कि बीवी को भी यह हक़ होगा।

चौथी सूरत यह है कि अगर बीवी को शोहर से शिकायत हों कि वह इस से बुरा सुलूक करता है या इस के हुकूक़ अदा नहीं करता या इसका ख़र्च नहीं उठा पाता तो वह अदालत में जा सकती है और क़ाज़ी उनका निकाह ख़त्म कर सकता है। इस सूरत में वह शौहर को पूरी या थोड़ी अदायगी का हुक्म भी दे सकता है।

पांचवी और आख़री क़िस्म खुलअ है। अगर बीवी सिर्फ़ ज़ाती नापसंदीदगी की वजह से अलग होना चाहती है। शौहर में कोई ख़राबी नहीं मगर वह फिर भी अलग होना चाहती है तो वह खुद अलग होने की दरख़्वास्त कर सकती है। उसे ख़ुलअ कहते हैं लेकिन इस सिलसिले में बहुत कम बातचीत की जाती है।

बहरहाल इस्लाम में यही क़िस्में हैं। उम्मीद है आप को अपने सवाल का जवाब मिल चुका होगा।

प्र०-22 औरतों को मस्जिद में जाने की इजाज़त क्यों नहीं है?

उ०- सवाल यह पूछा गया है कि औरतों को मस्जिद में जाने की इजाज़त क्यों नहीं है और यह एक मुश्किल सवाल है क्योंकि पूरे

क़ुरआन में किसी भी जगह औरतों को मस्जिदों में जाने से मना नहीं किया गया और न ही हदीसों में औरतों को मस्जिद में नमाज़ पढ़ने से रोका गया है। कुछ लोग एक ख़ास हदीस का हवाला देते हैं जिस में पैग़म्बर-ए-इस्लाम (स.अ.व.) ने फ़रमाया कि; औरत के लिए मस्जिद में नमाज़ पढ़ने से बेहतर है कि वह घर में नमाज़ पढ़े और घर के सेहन में नमाज़ पढ़ने से बेहतर है कि कमरे में पढ़े। लेकिन यह लोग सिर्फ़ एक हदीस पर ज़ोर दे रहे हैं और बाक़ी तमाम हदीसों को नज़रअंदाज़ कर रहे हैं।

नबी करीम (स.अ.व.) ने फ़रमाया मस्जिद में बाजमात नमाज़ पढ़ने का सवाब सत्ताईस गुना ज़्यादा है। एक औरत ने पूछा या रसूल अल्लाह (स.अ.व.) हमारे दूध पीते बच्चे हैं और हमें घर का काम काज करना होता है हम किस तरह मस्जिद में आ सकते हैं। तो जवाब में रसूल अल्लाह (स.अ.व.) ने फ़रमाया कि औरत के लिए मस्जिद के बदले घर में और घर के सेहन के मुक़ाबले कमरे में नमाज़ पढ़ना बेहतर है। अगर इस के बच्चे छोटे हैं या कोई और मस्ला है तो उसे उतना ही सवाब मिलेगा जितना मस्जिद में नमाज़ पढ़ने का होता है।

कई हदीसों से पता चलता है कि औरतों को मस्जिद में आने से मना नहीं किया गया। एक हदीस का मफ़्हूम (मतलब) है कि "अल्लाह की बन्दियों को मस्जिद में आने से न रोको" और एक हदीस का मफ़्हूम है:

"रसूल अल्लाह (स.अ.व.) ने शोहरो को कहा कि अगर उनकी बीवीयां मस्जिद में जाना चाहें तो उन्हें रोका न जाए।"

इस तरह की कई हदीसे हैं। मैं इस वक़्त तफ़सील में नहीं जाना चाहता लेकिन असल बात यह है कि इस्लाम औरतों को मस्जिद में आने से नहीं रोकता। शर्त यह है कि मस्जिद में औरतों के लिए

इंतिज़ाम और सहुलत मौजूद हो क्योंकि मर्द और औरत के इख्तिलात (मैल-जोल) की इजाज़त इस्लाम नहीं देता।

हम जानते हैं कि दूसरे मज़ाहिब की इबादतगाहों में किया होता है वहां लोग इबादत के लिए कम और नज़रबाज़ी के लिए ज़्यादा आते हैं। लिहाज़ा इस की इजाज़त तो इस्लाम नहीं देता। अलबत्ता अगर मस्जिद में औरतों के लिए अलग इंतिज़ाम हो उन के रास्ते अलग हों। वुज़ू वग़ैरा का इंतिज़ाम अलग हो, औरतों के लिए अलग जगह बनी हुई हो जो मर्द नमाज़ियों के सामने न हो, तो वह मस्जिद में नमाज़ पढ़ सकती हैं।

नमाज़ में हम कन्धे से कन्धा मिलाकर खड़े होते हैं और डॉक्टरों का कहना है कि औरतों का जिस्मानी दर्जा हरारत मर्दों से ज़्यादा होता है। लिहाज़ा अगर औरतें मर्दों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़ी होंगी तो ज़रूरी है कि उनकी तवज्जह भटकेगी। इसी लिए औरतें पीछे खड़ी होती हैं।

अगर आप सऊदी अरब जाएं तो आप देखेंगे कि औरतें मस्जिदों में आती हैं। अगर आप अमरीका जाएं या लंदन जाएं तो वहां भी औरतें मस्जिद में नमाज़ पढ़ती हैं। सिर्फ़ हिन्दुस्तान और कुछ और देश ऐसे हैं जहां औरतें मस्जिद में नमाज़ नहीं पढ़ सकती।

यहां तक कि हरम शरीफ़ और मस्जिद नबवी में भी औरतों को आने की इजाज़त है। हिन्दुस्तान में भी अब कुछ मस्जिदों में औरतों के लिए अलग इंतिज़ाम होता है और मैं उम्मीद रखता हूं कि आगे मस्जिदों में भी यही होगा।

प्र०-23 क्या दूसरी शादी करने के लिए पहली बीवी से इजाज़त लेना ज़रूरी है?

उ०- सवाल पूछा गया है कि मर्द को दूसरी शादी करने के लिए पहली बीवी से इजाज़त लेना ज़रूरी है। इस्लाम में मर्द को दूसरी शादी के लिए पहली बीवी से इजाज़त लेने का पाबन्द नहीं किया गया।

क़ुरआन में एक से ज़्यादा शादियों के लिए एक ही शर्त लगाई गई है और वह है इन्साफ़। अगर वह अपनी बीवीयों में इन्साफ़ कर सकता है तो वह एक से ज़्यादा शादियां कर सकता है। अलबत्ता यह ज़रूरी है कि अगर पहली बीवी की इजाज़त से दूसरी शादी की जाए तो शोहर और बीवियों के सम्बंध ज़्यादा खुशगवार रहेंगे।

सिर्फ़ एक ही सूरत है जिस में मर्द को दूसरी शादी के लिए पहली बीवी से इजाज़त लेनी पढ़ती है और वह यह कि अगर बीवी ने शादी के वक्त निकाह के वक्त यह शर्त रखी हो कि शोहर दूसरी शादी नहीं करेगा तो फिर दूसरी शादी के लिए पहली बीवी की इजाज़त ज़रूरी हो जाती है। दूसरी सूरत में किसी इजाज़त की ज़रूरत नहीं।

प्र०-24 मैं पूछना चाहता हूं कि फ़िल्मों, गानो, नाविलों, रिसालो, और मिली-जुली तालीम ने हमारे दौर को जिंसी अनारकी (बे-नज़्मी) का दौर बना कर रख दिया है। क्या इस सूरतेहाल में यह मुनासिब होगा कि लड़कियों को अपनी मर्ज़ी से शादी करने की इजाज़त दे दी जाए?

उ०- भाई ने सवाल पूछा है कि इस जदीद दौर में जबकि जिंसी फ़िल्में इतनी ज़्यादा हैं, क्या यह मुनासिब होगा कि बेटियों को अपनी मर्ज़ी से शादी करने की इजाज़त दी जाए।

जैसा कि मैं ने पहले कहा, मां-बाप इस सिलसिले में सलाह दे सकते हैं रहनुमाई कर सकते हैं लेकिन ज़बरदस्ती नहीं कर सकते। मां-बाप यक़ीनन बेटियों को इस सिलसिले में अच्छी सलाह दे सकते हैं लेकिन इस बात की भी तो कोई ज़मानत नहीं कि मां-बाप हमेशा सही होंगे।

बहरहाल इस्लामी हुक्म यही है कि मां-बाप शादी के सिलसिले में बेटी की रहनुमाई कर सकते हैं। इस पर ज़बरदस्ती नहीं कर सकते

क्योंकि आख़िरकार बेटी ने ही शौहर के साथ ज़िन्दगी गुज़ारनी है इस के मां-बाप ने नहीं।

प्र०-25 यह पूछना चाहती हूं कि इस्लामी क़ानून के मुताबिक़ बच्चे का वली या सरपरस्त सिर्फ़ बाप ही क्यों हो सकता है?

उ०- मेरी बहन ने सवाल पूछा है कि मुस्लिम पर्सनल ला के मुताबिक़ सिर्फ़ बाप ही औलाद का सरपरस्त बन सकता है। ऐसा क्यों है?

मेरी बहन, ऐसा नहीं है। इस्लामी शरीअत के मुताबिक़ जब तक बच्चा छोटा होता है यानी तक़रीबन 7 साल की उम्र तक इस की सरपरस्त मां होती है। क्योंकि शुरू की उम्र में बाप से ज़्यादा ज़िम्मेदारी मां की होती है।

इसके बाद यह ज़िम्मेदारी बाप की तरफ़ आ जाती है। और जब बच्चा बालिग़ हो जाता है तो यह पूरे तौर पर उसकी अपनी मर्ज़ी होती है कि वह मां के साथ रहना चाहता है या बाप के साथ।

उम्मीद है आप को अपने सवाल का जवाब मिल चुका होगा।



AL HASANAT BOOKS PVT.LTD.
الحسنات بکس پرائیویٹ لمیٹڈ
3004/2 Sir Syed Ahmad Road, Darya Ganj, New Delhi-110002
Tel. : 91-11-2327 1845, Fax : 91-11-4156 3256